ब्रह्मप्रकरण

एवं जीवप्रकरणं समाप्य ब्रह्मप्रकरणम् आह सच्चिदानन्दरूपम्इति.

सच्चिदानन्दरूपं तु ब्रह्म व्यापकमव्ययम्।।
सर्वशक्तिस्वतन्त्रं च सर्वज्ञं गुणवर्जितम्।।६५।।

'ब्रह्म' इति धर्मिनिर्देशः परब्रह्मवाचकः. ब्रह्मपदार्थम् आह व्यापकम् इति. गुणोपसंहारन्यायेन. ''अविनाशी वा रे अयमात्माऽनुच्छित्ति धर्मा'' (बृहदा.उप.४।५।१४) इति श्रुतेः तद् अव्ययम्. ''यः सर्वज्ञः सर्वशक्तिः'' (मुण्ड.उप.१।१।९) इति श्रुतेः सर्वशक्ति. निर्धर्मकत्वे सर्वेषम् अनुपास्यो अप्राप्यो अफलश्च स्यात्. अतएव स्वतन्त्रः. यो हि निरवधिज्ञान-क्रियाशक्तियुक्तः स स्वतन्त्रो भवति. 'च'कारत् ''सर्वस्य वशी सर्वस्येशानः'' (बृहदा.उप.४।४।२२) इति श्रुतेः सर्वं वशे समानयति. गुणवर्जितं प्राकृतगुणरहितम्. एवं षड् धर्माः निस् पिताः।।६५।।

ब्रह्म सच्चिदानन्दरूप हे, व्यापक हे, यासों अखण्ड ऐश्वर्य वारो हे ये बात जताई. श्रुतिन्में ब्रह्मके परस्पर विरुद्ध अनेक धर्म लिखे हें. ब्रह्म जेसें छोटेसो छोटो हे तथा बडेसों भी बडो हे इत्यादिक. परन्तु उन धर्मन्के अर्थ न्यारे-न्यारे माने जांय तो ब्रह्म अनेक हो जाय हे तासों उन सब गुणन्को एक ब्रह्ममें ही उपसंहार माननो पडे हे. ''ब्रह्म अविनाशी हे'' यों कहिके ब्रह्म वीर्य वारो हे ये बात जताई. तथा ''सर्वशक्ति हे'' अर्थात् सब प्रकारकी सामर्थय वारो हे यों कहिके यश वारो हे ये बात जताई. ''स्वतन्त्र हे'' अर्थात् जाकी ज्ञान-क्रियाकी अवधि नहीं होय हे वो ही स्वतन्त्र कहावे हे यों कहिके ब्रह्म श्री वारो हे ये बात सिद्ध भई. ''सर्वज्ञ हे'' सब पदार्थन्कुं जाने हे यों कहिके ब्रह्म ज्ञान वारो हे ये बात जताई. ''प्राकृत गुणन् करिके रहित हे'', अर्थात् प्रकृतिके गुणन्में आपकी आसक्ति नहीं हे यों कहिके पूर्ण वैराग्य जतायो. या प्रकार परब्रह्मके छे धर्म दिखाये.

ब्रह्मकुं यदि निर्धर्मक-निराकार मानोगे तो कोई भी मनुष्य ब्रह्मकी उपासना नहीं कर सकेगो. तथा उपासना प्रकरणके वेदभागमें ''एतस्यात्मनो वैश्वानरस्य मूर्द्धैव सुतेजाश्चक्षुर् विश्वस्पः'' इत्यादिक वाक्यन्में जो वैश्वानरको मूर्द्धा सुतेजा हे, चक्षु विश्वस्प हे इत्यादि धर्म दिखायके उपासना करनो कह्यो हे सो सब व्यर्थ जायगो. निराकार होयवेके कारण कोई ब्रह्मकी उपासना नहीं कर सकेगो तो जीवकुं ब्रह्मकी प्राप्ति भी नहीं होय सकेगी, तथा जीवन्कुं परब्रह्म कुछ फल भी नहीं दे सकेगो. धर्म-रहित-निराकार ईश्वरकुं मानोगे तो ''सर्वस्येशानः'' (बृहदा.उप.४।४।२२) या श्रुतिमें ईश्वर सबको स्वामी हे ये बात लिखी हे सो भी नहीं बन सकेगी. तासों श्रुतिके कहे भये सब धर्म ब्रह्ममें हें तथा जिन धर्मन्की श्रुतिमें नाईं करि राखी हे विन धर्मन्कुं लौकिकधर्म जाननें. वेद परम आप्त हे, अपने कहे भये धर्मन्कों अपने ही वाक्यन्सों निषेध कभी नहीं करे हे, क्योंके एक वार कहिके फेरि नट जानो मिथ्यावादीको काम हे।।६५।।

तत्र व्यापकत्वं नाम देशाद्यपरिच्छिन्नत्वम्, तद् वस्तुपरिच्छेदेन उपपद्यतइति त्रितयपरिच्छेदाभावाय आह सजातीय इति.

सजातीय-विजातीय-स्वगतद्वैतवर्जितम्।।

सजातीयाः जीवाः, विजातियाः जडाः, स्वगताः अन्तर्यामिणः. त्रिष्वपि भगवान् अनुस्यूतः. त्रिस्पश्च भवतीति तैः निस् पितं द्वैतं भेदः तद् वर्जितम्. अत्र बुद्धिः अवतारेष्विव कर्तव्या.

एवं भगवत्त्वम् उपपाद्य तन्त्रोक्तान् गुणान् आह सत्यादिगुणसाहस्रैः इति.

सत्यादिगुणसाहस्रैर् युक्तमौत्पत्तिकैः सदा।।६६।।

''सत्यं शौचं दया क्षान्तिः'' (भाग.पुरा.१।१६।२६) इत्यादिश्लोके सत्यादयो गुणाः निरूपिताः. ते च औत्पत्तिकाः. सदा सृष्टिप्रलयादावपि।।६६।।

ब्रह्म हे सो व्यापक हे, अर्थात् देश-काल-वस्तु करिकें जाको नाप-तोल नहीं होय सके वा पदार्थको 'व्यापक' कहे हे. जहां तांई नाप-तोल करिवे वारो पदार्थ अलग होय तहां तांई व्यापकता नहीं होय सके. ब्रह्मसों भिन्न तो कोई भी पदार्थ नहीं हे, क्योंके जगतमें जड़-जीव-अन्तर्यामी ये तीन पदार्थ हें. भगवान्नें इच्छा करिकें चैतन्य-आनन्द छिपाय लीनों तब विजातीय जड़पदार्थ प्रकट भये. जब आनन्द छिपाय लीनो तब सजातीय जीव प्रकट भये. जब आपने सत्-चित्-आनन्द तीनों अंशन्कों प्रकट राखिके परिछिन्न स्वरूपसों अर्थात् परिमाणवाले स्वरूपसों नियतकार्य करिवेके अर्थ इच्छा करी तब स्वगत अन्तर्यामी प्रकट भये. इन तीनों ही पदार्थन्में भगवान् अनुस्यूत हें, अर्थात् जडमें सद्रूप करिकें विराजे हें, चिद्रूप करिकें जीवमें विराजे हें, तथा प्रकट आनन्दस्वरूप करिके अन्तर्यामीमें विराजे हें. जड-जीव-अन्तर्यामीस्वरूप आपही होय रहे हें तासों इन तीनों पदार्थन्को भेद आपमें नहीं हे. अर्थात् ये तीनों पदार्थ भगवान्सों न्यारे हें एसी बुद्धि नहीं राखनी. जेसें भगवान्के अवतारन्कों भगवान्सों अलग नहीं माने हें तेसे जड-जीव-अन्तर्यामीकुं भी भगवान्सों न्यारे नहीं मानने. क्योंके वेदमें ''उदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति'' (तैत्ति.उप.२।७) इत्यादि श्रुतिन्में भगवान्सों अलग कोई पदार्थकुं माने हे वाकुं भय होय हे ये बात लिखी हे.

सत्य, दया आदि हजारन् गुण आपमें सदा ही रहे हें. अर्थात् सृष्टिकालमें, प्रलयकालमें तथा अवतारदशामें ये गुण जेसे-के-तेसे रहे आवे हें. तिनमेंसो कितनेक गुण श्रीभागवतमें वर्णन किये हें उनके नाम वर्णन करे हें: सत्य, पवित्रता, दया, क्षमा, दान, सन्तोष, सरलता, शम, दम, समता, तप, (तितिक्षा) अपराध सह लेनो, उपराम, (श्रुत) शास्त्रकुं विचारनो, स्वरूपज्ञान, वैराग्य, ईश्वरता, शूरता, तेज, बल, स्मृति, स्वतन्त्रता, क्रियाकुशलता, कान्ति, धीरता, कोमलता, बुद्धिवैभव, विनय, सुस्वभाव, इन्द्रिय-मन-शरीरकी सुन्दरता, भोगकी योग्यता, गम्भीरता, स्थिरता, श्रद्धा, पूज्यता, निरहङ्कारता इत्यादि (भाग.पुरा.१।१६।२६-२९) अनन्तगुण अवतारमें भी आपके सङ्ग ही प्रकट होवे हें।।६६।।

पुनः श्रुत्युक्तान् गुणान् उपसंहरति पूर्वोक्तानां वैदिकत्वाय सर्वाधारम् इति.
सर्वाधारं वश्यमायम् आनन्दाकारमुत्तमम्।।
प्रापञ्चिकपदार्थानां सर्वेषां तद्विलक्षणम्।।६७।।

''सेतुर्विधरणम्'' (बृहदा.उप.४।४।२२) इति श्रुतेः. गीतायां मायासम्बन्धस्य उक्तत्वात्, मायाधीनो भवेद् इति आशङ्क्य आह वश्यमायम् इति. साकारताम् आह आनन्दाकारम् इति. उत्तमम् अक्षरादपि. यद्यपि कारणधर्माएव कार्ये भवन्ति तथापि कार्यगतत्वेन अन्यथाप्रतीतिः. तद् व्यावृत्त्यर्थम् आह प्रापञ्चिकपदार्थानाम् इति।।६७।।

आप अनन्तगुणके आधार हे, यामें कहा आश्चर्य हे, किन्तु वेदमें ''स सेतुर्विधरणः'' इत्यादि श्रुतिन्में सर्वपदार्थके आप आधार हें ये बात लिखी हे. सबके आधार होनो ब्रह्मधर्म हे ये बात ''धृतेश्च महिम्ना'' (ब्रह्मसूत्र१।३।१६) इत्यादि सूत्रन्में स्पष्ट लिखी हे.

शङ्का : जब आपको एसो स्वरूप हे तो सब जीवन्कुं एसे स्वरूपको क्यों नहीं अनुभव होय हे? या शङ्काको समाधान गीताजीमें लिख्यो हे. ''नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमायासमावृतः'' (भग.गीता७।१४). अर्थ:सब जीवन्कुं मेरे स्वरूपको अनुभव नहीं होवे हे क्योंके में योगमाया करिके ढंक्यो भयोहुं.

तहां ये शङ्का होय हे:माया करिके ढके भये आप हें, तब तो मायाके आधीन भगवान् होंयगे? एसो सन्देह होवे हे ताके दूर करिवेके अर्थ श्रीवल्लभाचार्यजी आज्ञाकरे हें ''वश्यमायम्''. अर्थ:वश हे माया जिनके. भगवान् मायाके आधीन नहीं हें, माया भगवान्के आधीन हे. जेसे पाश वारे पुरुषकी पाश ओरन्कुं बांधे हे पाश वारेकुं नहीं बांध सके हे. जेसें सूर्य मेघन्सों

कभी ढक जावे हे तासों मेघन्के आधीन सूर्य नहीं होवे हे, क्योंके सूर्यकी किरणद्वारा मेघ बने हें तासों मेघ सूर्यसों जुदे नहीं होय सके हे. ''याभिरादित्यः तपति रश्मिभिः ताभिः पर्जन्यो वर्षति'' (महाना.उप.१७।१३) या श्रुति वचनसों मेघके सूर्यसों अभिन्न होयवेकी सिद्धि होवे हे. याही प्रकार माया भी भगवान्को एक स्प हे. ये बात एकादशस्कन्धमें ''तन्मायाफलस्पेण'' (भाग.पुरा.११।२४।३) या श्लोकमें स्पष्ट हे.

अब ये शङ्का होवे हे के वेदमें ''विश्वतश्चक्षुः''(श्वेता.उप.३।३) ''सहस्त्रशीर्षा पुरुषः'' इत्यादि वाक्यन्में जो ब्रह्मके आकारको वर्णन हे सो आकार भी मायाको ही बनायो होयगो–या शङ्काके दूर करिवेके अर्थ कहे हें ''आनन्दाकरम्''.

मुण्डकश्रुतिमें ''आनन्दस्पममृतं यद्विभाति'' (मुण्डक.उप.२।२।७), नृसिंहोत्तरतापिनीमें ''आनन्दस्पः सर्वाधिष्ठानः'' (नृसिंहोत्त.उप.) इत्यादिकन्में भगवान्को आकार आनन्दस्प हे, आनन्दके ही आपके सब अङ्ग हें ये लिख्यो हे. पञ्चभूतन्को रच्यो आपको अङ्ग नहीं हे, ताहीसों ''विजरो विशोको विमृत्युः'' (छान्दो.उप.८।१।५) या छान्दोग्य उपनिषद्की श्रुतिमें प्रभु–स्वस्पमें जरा–मृत्यु–चिन्ता आदि लौकिक देहके धर्म नहीं हें ये बात स्पष्ट लिखी हे. तासों ये सिद्ध भयो के जिन श्रुतिन्में अङ्गन्को वर्णन हे विन अङ्गन्कुं आनन्दके रचे भये ही जाननें. जिन श्रुतिन्में अङ्गन्को निषेध हे वहां पञ्चभूतन्के बने अङ्गन्को निषेध करे हें एसे समुझनो. क्योंके ''क्षरः सर्वाणि भूतानि'' (भग.गीता५।१७) या गीतावाक्यके अनुसार पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पञ्चभूत क्षरब्रह्ममें गिनेजावे हें. क्षरब्रह्मसों उत्तम अक्षर ब्रह्म हे, अक्षरब्रह्मसों उत्तम परब्रह्म पुरुषोत्तम हे. पुरुषोत्तमको आकार पञ्च भूतन्को रच्यो भयो सर्वथा नहीं होय सके हे. ताहीसों ''अवजानन्ति मां मूढा मानुषीं तनुमाश्रितम्'' (भग.गीता९।११) या गीतावाक्यमें भगवान्के श्रीअङ्गकुं मनुष्यदेहके समान रुधिर–मांसादिकन्को बन्यो भयो मानवे वारेन्कुं मूर्ख बताये हें.

अब ये शङ्का भई के जगत्कुं भगवान्को कार्य मानो हो तथा भगवान्सों अलग नहीं मानो हो तब तो जगत्में जो जडपदार्थ हें वे भी भगवान्को ही स्प भये तब तो तुमारे मतमें परब्रह्म भी जडस्प ही भयो. ताको ये उत्तर हे के यद्यपि कारणकेही धर्म कार्यमें होवे हे तथापि कार्यगत होयवेसों वे धर्म अन्यथा प्रतीत होवे हें. तात्पर्य ये हे–''तदेजति तन्नैजति'' (ईशा.उप.३।५) इत्यादि श्रुतिन्में ब्रह्मके जो ''अनेजत्वादिधर्म'' () चेष्टारहितता आदि धर्म हें वे ही क्रीडाकी इच्छा करिके आनन्द–चैतन्यके छिपाय लिये पाछें कार्यमें जडत्वादि स्पसों प्रतीत होवे हें. क्रीडाकर्ता जो प्रकट सच्चिदानन्द पूर्णपुरुषोत्तम हें सो जगत्के जितने पदार्थ हें उन सबन्सों विलक्षण हें।।६७।।

एवं स्वधर्मस्पधर्मान् उक्त्वा कार्यम् आह जगतः समवायि स्यादृइति.

जगतः समवायि स्यात् तदेव च निमित्तकम्।।

कदाचिद्रमते स्वस्मिन् प्रपञ्चेऽपि क्वचित्सुखम्।।६८।।

सर्वस्यापि जगतः कार्यस्पस्य च ब्रह्मैव समवायिकारणम्. एतस्मिन्नेव ओतप्रोतं गार्गीब्राह्मणे प्रसिद्धम्. तदेव निमित्तकारणम्. 'च'कारात् कर्तृच. तस्य प्रपञ्चनिर्माणे हेतुम् आह कदाचिद्रमते इति. यदा स्वस्मिन् रमते तदा प्रपञ्चम् उपसंहरति; यदा प्रपञ्चे रमते तदा प्रपञ्चं विस्तारयति. प्रपञ्चभावो भगवत्येव लीनः प्रकटीभवति इति अर्थः।।६८।।

सम्पूर्ण जगत्को ब्रह्म ही समवायिकारण हे. समवायिकारण वासों कहे हें जामें कार्य ओतप्रोत होय, अर्थात् पुररह्यो होय के जासों कभी अलग नहीं होय सके. जेसे कपडा तागेन्में पुर रह्यो हे तागेन्सों कपडा अलग नहीं होय सके हे एसे ही जगत् भी ब्रह्मसों अलग नहीं होय सके हे. ये समावायिकारणपनो गार्गीब्राह्मणमें वेदमें स्पष्टलिख्यो हे. वहां गार्गीने प्रश्न कियो हे:''सब जगत् कोन पदार्थमें (ओतप्रोत) पुररह्यो हे?'' वहां उत्तर दियो हे:''सब जगत्में ब्रह्मही ओतप्रोत होय रह्यो हे''. ब्रह्म ही या जगत्को निमित्तकारण हे. तामें ''तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'' (तैत्ति.उप.२।१) ये श्रुति प्रमाण हे. ब्रह्म ही

या जगतको कर्ता हे तामें ''विश्वकृद्विश्वविदात्मयोनिः'' (श्वेता.उप.६।१६) तथा ''तदात्मानं स्वयमकुरुत'' (तैत्ति.उप.२।७) इत्यादिश्रुति प्रमाण हें.

शङ्का:भगवान्ने अपने स्वरूपसों जगत् बनायो हे सो जीवन्के अर्थ बनायो हे अथवा अपने अर्थ बनायो हे? यदि जीवन्के अर्थ भगवान्ने जगत् बनायो हे एसे कहोगे तो जेसे स्वामीके अर्थ अनेक पदार्थ सेवक सिद्ध करे हे या प्रकार भगवान्कुं जीवन्के आधीन मानने पडेंगे, तो पराधीन होयवेसों ईश्वरताकी हानि होवेगी. यदि कहोगे के स्वार्थ ही जगत् बनायो हे तो भगवान्को पूर्णकामपनो मिटे हे. या आक्षेपको समाधान करे हें. ''देवस्यैष स्वभावोयम् आप्तकामस्य का स्पृहा'' (गोडपादका.२।९). इत्यादि कहिके गौडपादने जा स्वभावकों सृष्टिके हेतु होयवको प्रतिपादन कियो हे वा स्वभावको स्वरूप भी ब्रह्मको क्रीडा करिवेको स्वभाव ही समझनो चहिये क्योंके अन्यथा ''स द्वितीयमैच्छत्'' ''क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते'' इत्यादि श्रुतिस्मृतिन्को विरोध होयगो. यद्यपि भगवान्कुं कोइ प्रकारकी इच्छा नहीं हे, तथापि भगवान्को क्रीडा करिवेको स्वभाव हे; जेसे जलको शीतलता करिवेको स्वभाव हे, अग्निको जलायवेको स्वभाव हे. जब आप अपने एक रूपमें रमण करिवेकी इच्छा करे हें तब जगत्को उपसंहार, अर्थात् अपने स्वरूपमें तिरोधान करे हें. जब भगवान् आप इकल्ले रमण नहीं करें हें, दूसरे पदार्थकी इच्छा करिके प्रपञ्चमें रमण करे हें तब जगत्को विस्तार करे हें, अर्थात् अनेक रूप–नामके भेद करिकें क्रीडाकी इच्छा होय हे तब भगवान्के स्वरूपमें छिप्यो भयो प्रपञ्च–जगत् प्रकट हो जाय हे।।६८।।

कार्यादिभावः कश्चिद् अन्यः इति आशङ्क्य ब्रह्मवादस्वरूपम् आह यत्र येन इति.

यत्र येन यतो यस्य यस्मै यद्यद्यथा यदा।।
स्यादिदं भगवान् साक्षात् प्रधानपुरुषेश्वरः।।६९।।

सर्वविभक्तीनां प्रकारस्य च भगवानेव अर्थः. प्रकृति–पुरुषौ कालश्च स एव।।६९।।

शङ्का : कार्यकुं सत्य मानोगे तो भगवान् तथा जगत दो पदार्थ भये, तो द्वैत भयो, शुद्धाद्वैत नहीं सिद्ध भयो, क्योंके शुद्धाद्वैतज्ञान वाको नाम हे जा ज्ञानसुं भगवान्सों न्यारो कोई पदार्थ प्रतीत नहीं होय.

उत्तर : जगत्कुं सत्य माने हें परन्तु भगवान्सों भिन्न नहीं मानेहें.

श्लोकार्थ : जा ठिकाने, जा समय, जासुं, जा रूपमें, जो कछु भी होय हे अथवा रहे हे वो सब आप ही हो. प्रकृतिके रूपमें भोग्य, पुरुषके रूपमें भोक्ता तथा इन दोनोंन्के नियामक ईश्वर हु साक्षाद् भगवान् आप ही हो. अर्थात् श्रीभागवत स्कन्ध१० अध्याय८२ के ''यत्र येन यतो यस्य'' इत्यादि श्लोकके अनुसार सब विभक्तिन्को भगवान् ही अर्थ हें।।६९।।

एवं पूर्वस्थितिम् उक्त्वा पश्चात्स्थितिम् आह यः सर्वत्रैवे इति.

यः सर्वत्रैव सन्तिष्ठन् अन्तरः संस्पृशेन्न तत्।।
शरीरं तन्न वेदेत्थं योऽनुविश्य प्रकाशते।।

सर्वेष्वेव पदार्थषु कार्येषु स्वयं तिष्ठन् तानि अन्तरयति स्वमध्ये स्थापयति इति अर्थः. तथा स्वयम् आधाराधेयभावं प्राप्नुवन्नपि तन् न स्पृशति. तर्हि अज्ञानेन तथा भवति? इति चेत्, न, इति आह शरीरम् इति. तत् सर्वमेव शरीरत्वेन मन्यते. तस्य च ज्ञापकं भवति सर्वं, तथापि न स्पृशति. तर्हि शरीरमेव भगवन्तम् आनन्दनिधित्वात् स्पृशेद्, इति चेत्, तत्र आहुः शरीरं कर्तृ ब्रह्म न वेद इति. इत्थम् अमुना प्रकारेण; योऽअनुविश्य प्रकाशते, ''यः पृथिव्यां तिष्ठन्'' (बृहदा.उप.३।७।३) इत्यादिश्रुतेः.

या प्रकार सृष्टिके पर्वूकी स्थितिको वर्णन करिके अब सृष्टिकालीन स्थितिको निरूपण करत हें.

श्लोकार्थ:वो सभी पदार्थके भीतर रहते भये भी उन पदार्थन्को स्पर्श नहीं करे हे. वो सभी पदार्थन्कुं अपनो शरीर मानिकें सब पदार्थन्में प्रविष्ट होयकें प्रकाशित होवे हे, किन्तु शरीर वाकुं या स्पमें नहीं जाने पावे हे.

शङ्का : अन्तर्यामी जड-जीवको स्पर्श नहीं करे हे तब तो अन्र्यामीको तथा जड-जीवको परस्पर भेद भयो, यामें शुद्धाद्वैतको सिद्धान्त कहां रह्यो?

उत्तर : सृष्टिदशामें लोकव्यवहार चलवेके अर्थ इच्छा करिके चैतन्य-आनन्दके तिरोभाव होयवेसों जड-जीव-अन्तर्यामीमें पर-स्पर भेद प्रतीत होवे हे. परन्तु ईश्वरके साथ कोई पदार्थको भेद नहीं हे, तासों भगवान्सों जड-जीव-अन्तर्यामी अलग नहि हें. जेसें वृक्षकी शाखा परस्पर एकसों एक न्यारी प्रतीत होंय हें परन्तु वृक्षसों कोई शाखा वस्तुतः न्यारी नहीं हें, तासों शुद्धाद्वैतमें कोई प्रकारको विरोध नहीं हे.

ननु श्रुत्यादिभेदेषु नानाप्रकारेण प्रतिपादितत्वाद्, अन्योन्यविरोधात्, न किञ्चित्प्रमाणं ब्रह्मणि भविष्यति इति आशङ्क्य आह सर्ववादानवसरम्इति.

सर्ववादानवसरं नानावादानुरोधि तत्।।७०।।

वस्तुतः श्रुतौ नानावाक्यानाम् एकवाक्यता निस्पिता, सर्वभवनसामर्थ्येनविरुद्धधर्माश्रयत्वात्. न एवंवादिनां वाक्यानि तत्तदंशवाक्यपराणि भवितुम् अर्हन्ति, तेषां तथा हृदयाभावात्. अतः सर्वे वादाः स्वभ्रान्तिपरिकल्पितत्वेन वस्तुस्पर्शाभावाद् अनवसरपराहताएव. अस्तु वादिनां हृदयं यथा तथा, वाक्यानां सरस्वतीस्पत्वात् कथं न एकवा-क्यता? इति आशङ्क्य आह नानावादानुरोधि तद् इति. एकैको वादो ब्रह्मणः एकैकधर्मप्रतिपादकैकैकवाक्यशेषइति भगवांस्तान् सर्वानेव अनुसरति।।७०।।

शङ्का-श्रुत्यादिमें ब्रह्मको विभिन्न प्रकारसों प्रतिपादन भयो हे. उनमें भी कहुं एक ग्रन्थको वाक्य दूसरे ग्रन्थके वाक्यसों विरु-द्धार्थ प्रकट करतो दीसे हे. जेसे ''सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'' या श्रुतिमें ब्रह्म सद्रूप हे ये बात लिखी हे ''असदेवेदमग्र आसीत्'' या श्रुतिमें ब्रह्म असद्स्प हे ये बात लिखी हे. या प्रकार अनेक श्रुतिन्में परस्पर विरोध हे. तासों वेदकों प्रमाण नहीं माननों.

उत्तर : कृष्णद्वैपायन वेदव्यासजीने परब्रह्मस्प वस्तुको स्वभाव जानिकें श्रुतिन्को विरोध दूर करिके एकवाक्यता करी हे. तात्पर्य ये हे के वेदको दोष नहीं माननो, वेदने तो जेसो ब्रह्मको स्वस्प हे तेसो ही निस्पण कियो हे. ब्रह्ममें सब स्प धारण करिवेकी सामर्थ्य जानिके वेदनें ब्रह्मके अनेक स्प वर्णन किये हें. तथा लोकमें जिन धर्मन्को परस्पर विरोध दीखे हे वेसे अनेक धर्मन्को ब्रह्मकुं आश्रय जानिकें लोकमें एक पदार्थमें नहीं सम्भव सके ऐसें अनेक धर्मन्को वेदने ब्रह्ममें निस्पण कियो हे. जेसें लोकमें एकही पदार्थ हाथीके समान तथा मच्छरके समान नहीं होय सके हे तथापि वेदने एक ही ब्रह्मकों हाथीके समान तथा मच्छरके समान बतायो हे. अन्य भी अनेक श्रुतिन्में ब्रह्मकी विरुद्धधर्माश्रयताको निस्पण कियो हे. परन्तु विवाद करिवे वारेन्के हृदय शुद्ध नहीं रहे हें तासों भ्रममें पडकें अनेक प्रकारके वाद बनाय ले हें. उनके मनके बनाये भये वाद ब्रह्मके स्वस्पको स्पर्श भी नहीं कर सके हें. ताहीसों श्रीआचार्यचरण आज्ञा करे हें 'सर्ववादानवसरम्' अर्थ:मनके बनाये सब वादको जामें अवसर नहीं हे एसो ब्रह्मको स्वस्प हे.

शङ्का : वादी लोगन्के हृदय मलिन होवो अथवा शुद्ध होवो परन्तु वाक्य तो जितने हें वे सब सरस्वती स्वस्प हें, उनकी तो एकवाक्यता होनी चहिये

समाधान करे हें ''नानावादानुरोधि तत्''. अर्थ:एक-एक वाद हे सो ब्रह्मके एक-एक धर्मको प्रतिपादन करिवे वारो जो एक-एक वाक्य उनके शेष-अङ्गभूत हे. भगवान् सब धर्मन्को अनुसरण करे हें. जेसे कितनेक नास्तिकादिक ईश्वरकुं नहीं माने हें. तथा कितनेक शून्य माने हें. कितनेक तुच्छ माने हें. कितनें ईश्वरको अभाव माने हें. कितनेक वादी नाश्य माने हें. कितनेक अद्रश्य अर्थात् ज्ञानमें तथा द्रष्टिमें नहीं आय सके एसो माने हें. परमेश्वरमें, परन्तु, ये सब बातें घट जावे हें. ताहीसों महोपनिष-द्में ''एष ह्येव शून्य, एष ह्येवाव्यक्तोऽद्रश्योऽचिन्त्यो निर्गुणश्च'' एसे कह्यो हे. अर्थ:ये ईश्वर ही शून्य हे, ये ईश्वर ही अभाव हे, ये ईश्वर ही तुच्छ हे, ये ईश्वर ही अद्रश्य हे. याही रीतिके शब्द नास्तिकादिकन्के मुखसों निकसें हें, परन्तु इन शब्दन्के उनके विचारे भये उलटे अर्थ तो परमात्माको स्पर्श भी नहीं कर सके हें. तथा वाणीस्पा सरस्वती तो ईश्वरमें सुलटी रीतिसों घट जावे हे. जेसे उपरके लिखे भये मन्त्रको अर्थ कूर्म पुराणमें लिख्यो हे. ''शमूनं कुरुते विष्णुर् अद्रश्यः सन् परं स्वयम्, तस्माच्छून्या-मिति प्रोक्तः तोदनात्तुच्छमुच्यते, नैष भावयितुं शक्यः केनचित् पुरुषोत्तमः, अतोऽभावं वदन्त्येनं नश्यत्वान्नाश इत्यपि'' अर्थ:ईश्वरके सुखके आगें लोकको सुख बहुत ही कम हे तासों ईश्वरकों शून्य कहे हें. सबन्के हृदयमें गुप्त होयकें प्रेरणा करे हें तासों तुच्छ कहे हें. भगवान्कुं कोई उत्पन्न नहीं कर सके हे तासों अभाव कहे हें. काल-मृत्यु आपको भक्षण नहीं कर सके हे तासों नाश्य कहे हें. एसें ही दोष वारे पुरुष भगवान्कुं अद्रश्य अथवा शून्यस्प माने हें. उनके मतको भगवान् अद्रश्य शून्य अभावस्प होयके अनुसरण करे हें. अर्थात् उनकुं भगवान् अपने स्वस्पको ज्ञान नहीं करावे हें. तसों उनके अर्थ अद्रश्य शून्य अभाव स्पही रहे हें. जे पुरुष भगवान्कुं पूर्णज्ञानक्रियावान् सर्वेश्वर सच्चिदानन्दस्प माने हें उनकुं ''रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति'' इत्यादि श्रुत्यनुसार रसस्प स्वस्पको अनुभव करायकें अनन्त आनन्द दे हें. या प्रकार नानावादके अनुरोधि हें अर्थात् अनेक प्रकारके वादी-विवादीके वाक्य भगवान्में घट जावे हें।।७०।।

तत्र ब्रह्मणि विरुद्धधर्माः सन्ति इति ज्ञापनार्थम् आह अनन्तमूर्तिइति.

अनन्तमूर्ति तद्ब्रह्म कूटस्थं चलमेव च।।
विरुद्धसर्वधर्माणाम् आश्रयं युक्त्यगोचरम्।।७१।।

अनन्ता मूर्तयो यस्य. ब्रह्म एकं व्यापकञ्च, तेन अनेकत्वम् एकत्वञ्च निस्पितम्. एवं गुणविरोधम् उक्त्वा क्रियाविरोधम् आह कूटस्थं चलमेव च इति. 'एव'कारः सगुणादिभेदविज्ञापनार्थः. 'च'कारो अनुक्तधर्मसङ्ग्रहार्थः. वाक्येष्विव अत्रापि स्वस्पे विरोधम् आशङ्क्य समाधानार्थं स्पष्टम् आह विरुद्ध सर्वधर्माणाम् इति. ब्रह्मैव हि सर्वा-धारम्, यथा भूमिः सहजविरुद्धानामपि मूषकादिजीवानाम्. कारणगतएव धर्मः पृथिव्यां भासते. विशेषेण लौकिक-युक्तिः अत्र नास्ति, तदगम्यत्वाद् इति आह युक्त्यगोचरम् इति।।७१।।

शङ्का : भगवान् यदि विद्यमान हें तो आपको अभाव अथवा शून्यस्प केसे हो सके हे? सर्वदा विद्यमान वस्तुको अभाव तो नहीं होय सके हे

समाधान : भगवान्में लोकसों विस्द्ध धर्म हें. लोकमें भावस्प घटादिक अभावस्प नहीं होय सके हें. भगवान् तो ''यदस्ति यन्नास्ति च विप्रवर्य'' इत्यादि वाक्यन्के अनुसार अस्ति-भावस्प भी हें तथा नास्ति-अभावस्प भी हें. ''यदेकमव्यक्तमनन्त-स्पम्'' अर्थ:ब्रह्म एक हे, व्यापक हे, अनन्तमूर्ति वारो हे. लोकमें जो एक होय सो अनेक नहीं होय हे. भगवान् एक हें तथा अनेक भी हें या प्रकार लोकविस्द्ध गुण दिखायकें लोकविरुद्ध क्रिया दिखावें हें. ''तदेजति तन्नेजति'' या श्रुतिके अनुसार भग-वान् कूटस्थ हें, अर्थात् अचल हें तथा चल भी हें. याही प्रकारसों गुणादिभेद भी भगवान्में सम्भव हो सके हें. एसे अन्य भी वेदोक्त अनेक विरुद्धधर्म भगवान्मे हें यहां, परन्तु, विस्तारभयसों वर्णन नहीं करे हें.

परस्पर विरुद्ध धर्म एक पदार्थमें केसे रह सके हें? एसी शङ्का नहीं करनी. क्योंके ब्रह्म ही सब पदार्थन्को आधार हे. जेसे भूमि सहज विरोध राखिवे वारे सांप-मूषा, नाहर-बकरी आदि अनेक जीवन्को आधार हे. ओर जेसे बुद्धि परस्पर विरुद्ध जाग्रत् तथा स्वप्न अवस्था आदि वृत्तिको आधार हे वेसें ही ब्रह्म सर्व पदार्थन्को आधार हे. तथा पृथ्वी आदि पदार्थन्में भी

भगवान्की ही विरुद्धधर्माश्रयता भासमान होवे हे. विशेष करिके ब्रह्ममें लौकिक युक्तिकी पहोंच नहीं हे. जेसें वेदमें हजारन् मस्तक-कर-चरणारविन्द वारे भगवान्कुं बताये हें ये बात लौकिक युक्ति करिके गम्य नहीं हे. परन्तु वेदोक्त हे तासों अवश्य मानी जावे हे. एसेंही वेदोक्त विरुद्ध धर्माश्रयता भी मानी जावे हे।।७१।।

ननु अवतारेषु भगवत्त्वश्रुतेः लौकिकप्रमाणविषयत्ववत् लौकिकविषयत्वमपि कुतो न? इति आशङ्क्य आह आविर्भावतिरोभावैः इति.

आविर्भावतिरोभावैर् मोहनं बहुरू पतः।।
इन्द्रियाणान्तु सामर्थ्याद् अदृश्यं स्वेच्छयातु तत्।।७२।।

आविर्भावः अवतारो, मत्स्यादिरू पेण प्राकट्यम्. तिरोभावः अवतारसमाप्तिः. ते च बहुप्रकाराः स्थावरेभ्यो जङ्गमेभ्यः स्वतोऽपि भवन्ति. ते सर्वे प्रकारा मोहकाएव, नटवद् बहुरू पत्वात्. अन्यथा लौकिकयुक्तेः लङ्घनं न स्यात्. न हि मत्स्यो अह्ना योजनशतं वर्धते, नापि क्षणेन पर्वताकारो भवति वराहः. अतो लौकिकबुद्धिविषयत्वं नटइव ध्वान्तम्. स्वतो न लौकिकयुक्तिगोचरत्वम् इति अर्थः. तथापि कृष्णादयः सर्वैः दृष्टाअपि तेषु कथं लौकिकप्रमाणाविषयत्वम्? तत्र आह इन्द्रियाणां तु सामर्थ्याद् इति. चक्षुः न स्वसामर्थ्येन भगवन्तं विषयीकरोति, किन्तु भगवदिच्छयैव ''मां सर्वे पश्यन्तु'' इति एतद्रूपया तद् दृश्यम्।।७२।।

शङ्का : अवतारन्में भगवान् मनुष्यन्की लौकिक बुध्येन्द्रियादिन्सों अनुभूत होय हें एसेही लौकिक युक्तिन्सों भी भगवान् जानिवेमें आने चहियें.

उत्तर : लौकिक बुद्धि तथा लौकिक इन्द्रियन् करिके भगवान् ग्रहण करिवेमें आ जाय हें ये भ्रममात्र हे. जेसे नट अनेक रू प दिखावे हे तथा देखवे वारेन्कुं नाहर, हाथी, राजा के होयवेको भ्रम होय जावे हे एसे ही राम-कृष्णादि अवतारन्कुं भी साधारण मनुष्य समुझवेको भ्रम हो जाय हे. तथा मत्स्यावतार, वराहावतार आदिमें साधारण मच्छ तथा साधारण सूवर हे एसो मोह हो जावे हे. ओर जितने प्रकट होयवेके तथा अवतारकुं तिरोहित करिवेके प्रकार हें उनमें लौकिक युक्ति नहीं चल सके हे. जेसें थम्भासों प्रकट हो जानों, तथा हंसावतारमें स्वतः प्रकट हो जानों, मत्स्यावतारमें शीघ्र ही सरोवरके समान हो जानों, वाराहावतारमें क्षणमात्रमें पर्वताकार हो जानों आदि. तासों लौकिक प्रमाण तथा लौकिक युक्तिन्सों भगवान् नहीं जाने जांय हें.

यद्यपि लौकिक नेत्रादिकन्सों राम-कृष्णादि अवतारके दर्शन होवे हें तथापि लौकिक प्रमाण करिके गम्य भगवान् नहीं हें, क्योंकि नेत्र आदि इन्द्रियन्की भगवान्कुं देखिवेकी सामर्थ्य नहीं हे. भगवान्की जब सब जीवन्कुं अपनो स्वरू प दिखायवेकी इच्छा होवे हे तब ही नेत्र आदि इन्द्रियद्वारा आप दीखवेमें आवे हें, नेत्र आदि इन्द्रिय अपनी सामर्थ्यसों देवतान्कों भी नहीं देख सके हें तब अवतारन्को केसे देख सकेंगी।।७२।।

ननु ''रू पवद् द्रव्यं चाक्षुषम्'' इति महत्त्वाद् उद्भूतरू पत्वाच्च कुतो न चाक्षुषत्वम्? तत्र आह आनन्दरू पे इति.

आनन्दरू पे शुद्धस्य सत्वस्य फलनं यदा।।
तदा मरकतश्यामम् आविर्भावे प्रकाशते।।७३।।

आनन्दरू पे आनन्दएव ब्रह्मणि रू पस्थानीयः. तत्र शुद्धस्य सत्वस्य देवतारू पस्य भगवदिच्छया श्रीभगवदासनत्वेन स्फुरितस्य श्यामत्वात् तस्य प्रतिफलनेन् आनन्दो नीलमेघवद् भासते इति अर्थः, यथा स्फटिको जपाकुसुमेन. श्वेतपाषाणेषु प्रविष्टोऽपि स्फटिको जपाकुसुमलौहित्यं गृह्णन् पाषाणेभ्यो वैशिष्ट्यम् आत्मनः प्रतिपादयति, तथा ब्रह्मापि जगति पुराणेषु प्रकटीभवत् तच्छ्यामत्वादि गृह्णद् ब्रह्मत्वमपि ख्यापयति इति भावः. प्रतिफलनेन् आनन्दो नीलमेघवद् भासते इति अर्थः, यथा स्फटिको जपाकुसुमेन. श्वेतपाषाणेषु प्रविष्टोऽपि स्फटिको जपाकुसुमलौहित्यं गृह्णन् पाषाणेभ्यो

वैशिष्ट्यम् आत्मनः प्रतिपादयति, तथा ब्रह्मापि जगति पुराणेषु प्रकटीभवत् तच्छ्यामत्वादि गृह्णद् ब्रह्मत्वमपि ख्याप-यति इति भावः. सत्वरजस्तमसां नील-रक्त-श्वेतस् पतेति गुणावतारवाक्ये: निर्णीयते।।७३।।

शङ्का : जो प्रकट स्प वारो पदार्थ होवे हे वाकुं नेत्र देख सके हे ये नियम हे. भगवान् यदि प्रकटस्प वारे हें तो नेत्रकरिकें अवश्य दीखने चहियें

उत्तर : जो लौकिक प्रकटस्प वालो पदार्थ होवे हे वाकुं नेत्र देख सके हे ये नियम हे. ब्रह्ममें तो लौकिक स्प नहीं हे तासों नेत्र नहीं देख सके हे. याहीसों कहीं-कहीं अस्प ब्रह्मको नाम हे, अर्थात् मायारचित स्प ब्रह्ममें नहीं हे. ब्रह्मके विषें तो आनन्द हे सोही स्पके स्थानमें समझनो. इच्छा करिकें आनन्दही स्पात्मक भासमान होवे हे. लौकिक स्प भगवान्में नहीं हे ताहीसों नेत्र आदि इन्द्रिय अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कुं नहीं देख सके हें. तासों आसुर सब जीवन्कुं नेत्रन्की सामर्थ्य करिके अवतारादिक-न्के जो दर्शन भये सो औपाधिक मायिक स्पके ही भये, आनन्दमय स्पके नहीं भये. आनन्दमय स्पके दर्शन उनही जीवन्कुं भये जिनकुं अनुग्रह पूर्वक इच्छा करिके करवाये. तहां साधारण जीवन्कुं जो दर्शन भये तामें द्रष्टान्त दे हें, जेसें श्वेत पाषाणके मध्यमें (जपाकुसम) लाल फूलके उपर स्वच्छ स्फटिकमणि धरी होवे हे तब देखवे वारेकुं स्फटिकमणिको स्वाभाविक रङ्ग तो नहीं दीखे हे, लाल रङ्गही मणिको दीखे हे, तथापि समीपके अन्य श्वेत पाषाणन्की अपेक्षा मणिमें चिलक अधिक दीखे हे, एसें ही साधारण जीवन्कुं अवतारको आनन्दमयस्प तो नहीं दीखे हे परि इच्छा करिकें भगवान्ने सत्वगुणके देवताकों आसन स्पसों ग्रहण करि राख्यो हे वाकी जो आनन्दमें झांई पडे हे तासों वो आनन्द नीलमेघके समान भासमान होवे हे. जेसें लाल फूल करिके स्फटिकमणि लाल मालुम पडवे लाग जावे हे तथापि अन्य पत्थरन् बीच चिलक अधिक रहे हे एसेंही भगवान् ब्रह्मा-विष्णु-शिवादि गुणावतारन्में मायाके सत्वगुण, रजोगुण तथा तमोगुण करिके श्याम-लाल-श्वेत स्पसों भासमान होवे हें, तथापि अन्य जीवन्की अपेक्षा उन स्पन्में ब्रह्मत्व प्रकट राखे हें. क्योंकि भगवान् जा पदार्थमें स्थित रहे हें वा पदार्थकु अपने भीतर स्थित करले हें. जेसें लोहके गोलामें स्थित होयके अग्नि लोहके गोलाकुं अपने भीतर स्थित करिके आपुन बाहिर प्रकट होय जावे हे. ये बात अन्तर्यामी ब्राह्मणमें लिखी हे. या प्रकार (मायिक) औपाधिक स्पमात्र नेत्रन्की सामर्थ्यसों दीख सके हे. भगवान्के दर्शन तो इच्छा आनन्द करिके ही हो सके हे. लौकिक नेत्रादि इन्द्रियन्की सामर्थ्यसों भगवान्को दर्शन नहीं होय सके हे. इतने विस्तार करिके ये बात सिद्ध भई के भगवान् इन्द्रियके गोचर नहीं हें. या प्रकार ही पृथ्वीमें नीलस्पतासों आपको अविर्भाव हे, जलमें प्राणमें श्वेतस्पतासों, तेजमें रक्तस्पतासों तथा वायुमें पीतस्पतासों आपको प्राकट्य समुझनो. युगावतारन्में भी याही रीतसों वर्णविभाग आगेके श्लोकमें दिखावे हें।।७३।।

उपपत्त्यन्तरम् आह चतुयुर्गेषु च तथा इति.

चतुर्युगेषु च तथा नानास्पवदेव तत्।।
उपाधिकालस्पं हि तादृशं प्रतिबिम्बते।।७४।।

''कृते शुक्लश्चतुर्बाहुः'' (भाग.पुरा.११।५।२१) इति वाक्यात्, अन्यथा नियतं स्पं न स्यात्. तत्रापि हेतुम् आह उपाधि इति. उपाधिकालः सत्यादिदेवतास्पः, तस्य स्पं ब्रह्मणि प्रतिबिम्बते. कालविशेषे स्पविशेषः तदाधार-त्वेन ब्रह्मणि स्फुरितो ब्रह्मत्वं सम्पादयति इति अर्थः।।७४।।

सत्ययुगको अभिमानी देवता कालको जब भगवान्के आधार स्पसों स्फुरण होवे हे तब वाकी श्वेत झांईसों भगवान्को श्वेतस्प सत्ययुगमें भासमान होवे हे. याही प्रकार त्रेता-द्वापर-कलियुगके रक्त-पीत-श्याम देवतान्की झांई करिकें उन-उन युगन्में भगवान् रक्त-पीत-श्यामस्पसों भासमान होवे हें. ओर पहिले कहे अग्नि गोलाके द्रष्टान्तानुसार अपने आधारभूत कालाभिमानी देवतान्कुं आप अपने भीतर स्थित करिकें उनकुं भी अवतीर्ण ब्रह्मत्व सम्पादन करे हें. या रीतिसों प्रतिफलन करिके ब्रह्मत्व सिद्ध कियो. तथा नेत्रन्की सामर्थ्यसों जो भगवान्को स्प दीखवेमें आवे हे वाकी प्राकृतता सिद्ध करी.

अब भगवान्के आनन्दाकारमें मायिकपनेकी शङ्का दूर करिवेके अर्थ मुख्य सिद्धान्तके अनुसार ''आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्'' ''शबलात् श्यामं प्रपद्ये'' (छान्दो.उप.८।१३।१) इत्यादि श्रुतिन्में लिख्यो भयो जो कृष्णको अप्राकृत अलौकिक स्प हे ताको वर्णन करे हें।।७४।।

एवं प्रतिफलत्वेन ब्रह्मत्वं प्राकृतस्पवत्वञ्च साधयित्वा प्रकारान्तरेण स्पवत्त्वं साधयति अथवा इति.

अथवा शून्यवद्गाढं व्योमवद् ब्रह्म तादृशम्।।
प्रकाशते लोकदृष्ट्या नान्यथा दृक् स्पृशेत्परम्।।७५।।

यथा मेघादिरहिते देशे आकाशे नीलिमा प्रतीयते. चक्षू स्पवद् द्रव्यं गृह्णत् तदभावे दूरं गतं सन् नीलमिव पश्यति, तथा अन्धकारम्. नैतावता आकाशे अन्धकारे वा स्पम् अस्ति. तथा ब्रह्माऽपि अतिगाढं गम्भीरतया नीलमिव भाति इति अर्थः. अनेन अचाक्षुषत्वं ज्ञापितं भवति. पूर्वापेक्षया अयं पक्षो महान् इति ज्ञापयितुम् आह नान्यथा दृक् स्पृशेत्परम्इति. ''पराञ्चि खानि'' (कठोप.२।१।१) इति श्रुतेः, परं चक्षुः न स्पृशति, अन्यथा परत्वमेव न स्याद् इति. यद्वा एवं नीलस्पत्वेन निराकारत्वं ब्रह्मणि आयातीति अरुच्या पक्षान्तरम् आह अथवा इति. उक्तव्याख्यानेऽपि तथा. एवं नीलिमभानोपपत्तावपि पीतवसनादिभानानुपपत्त्यपरिहाराद् अपसिद्धान्तत्वात् च व्याख्यानान्तरम् उच्यते. ब्रह्म तादृशम्, यादृशं दृश्यते तादृशमेव तद्वस्तु इति अर्थः. तत्र अनेकस्पत्वेन अब्रह्मत्वम् आशङ्क्य निरस्यति दृष्टान्तेन. गाढं घनीभूतं सैन्धवं लवणम् इति यावत्. तद् यथा अन्तर्बहिश्च एकस्परसं तथा ब्रह्म अनेकस्पत्वेन भासमानमपि शुद्धमेव इति अर्थः. ''स यथा सैन्धवघन''(बृहदा.उप.४।५।१३) इत्यादि धर्मिग्राहिकमानात् तत् तादृगेव मन्तव्यम् इति भावः. तर्हि ''पराञ्चि खानि'' (कठोपनि.२।१।१) इति श्रुतेः दृग्विषयत्वानुपपत्तिः इति अतः आह ''शून्यवद् व्योमवद् लोकदृष्ट्या ब्रह्म न प्रकाशते'' इति. शून्यगृहादौ वस्त्वभावादेव यथा न किञ्चिद् दृश्यं भवति तथा इति अर्थः. दर्शनं हि द्वेधा, तदर्थं प्राकट्येन साधारण्येच्छया वा. तत्र आद्याभाववत् स्वयं दृष्टान्तः, तेषाम् आसुरभावाद् यथोक्तब्रह्मानङ्गीकारात् तादृक् तान् प्रत्यसदेव इति भावः.

यद्वा. शून्यं तम उच्यते. तेन तद्वद् गृहादि लक्ष्यते. तत्र यथा सदपि वस्तु प्रकाशकाभावात् न भाति तथा इदम् अनुग्रहाभावात् तथा इति अर्थः. अनवतारदशायां तथेच्छाभावाद् व्योमवत् तथा इति अर्थः. स्पाभावाद् यथा तद् अयोग्यं तथा इदमपि इति भावः. इच्छा तत्र स्पस्थानीया ज्ञेया. दर्शने हेतुम् आह अन्यथा उक्तवैपरीत्येन तदनुग्रहतदिच्छाभ्यां दृक् परं स्पृशेद् इति अर्थः. यद्वा. जलेन न शून्या अशून्याः सजलमेघाः इति यावत् तद्वद् व्योमवच्च श्यामं स्वस्पं लोकदृष्ट्या यत् प्रतीयते तद् ब्रह्म. नतु उपाधिः औपाधिकं वा इति अर्थः.

ननु अत्र उपपत्तिः का? इति अत आह तादृशम् इति. तद् वस्त्वेव तथा इति अर्थः. न हि वस्तुस्वस्पम् उपपत्तिम् अपेक्षते इति भावः. उपपत्तिमपि आह अन्यथा यदि शुद्धं ब्रह्म न स्यात् तदा अदृग् न विद्यते, दृग् ज्ञानं यस्य स तथा पशु–पक्षि–वृक्षादिः परं प्रकृतिकालाद्यतीतं न स्पृशेत् न प्राप्नुयाद् इति अर्थः.

अथवा. अन्यथा शत्रुत्वेन ज्ञानं यस्य स पूतनादिः प्रकृत्याद्यतीतं न प्राप्नुयाद् इति अर्थः. अस्य तर्कस्पत्वाद् आपादकं ''यदि ब्रह्म न स्याद्'' इति स्पम् अर्थादेव प्राप्यते इति न उक्तम्।।७५।।

''तस्य हैतस्य पुरुषस्य स्पं यथा महाराजानं यथा पाण्ड्वाविकं यथेन्द्र गोपो यथाग्न्यर्चिः'' इत्यादि श्रुतिन्में इन्द्रगोप, मणि, अग्निज्वाला आदि पदार्थन्के समान परब्रह्म श्रीकृष्णको स्प लिख्यो हे सो स्प मायारचित नहीं हे किन्तु ब्रह्मात्मक ही हे. ''यन् मायया मोहिताश्च श्रीकृष्णं निर्गुणं विना'' या ब्रह्मवैवर्त प्रकृतिखण्डके वाक्यमें भी अन्य देवतान्कुं ही प्रकृति लिखे हें. श्रीकृष्णको तो स्वस्प निर्गुण ही हे, परन्तु अत्यन्त गम्भीर तथा अनवगाह्य हे, अर्थात् जा स्वस्पको अन्त दृष्टि नहीं पाय सके एसो आपको स्वस्प हे. तासों लोकदृष्टि करिके नील जेसो मालुम पडे हे. वस्तुतः नीलगुण वारो आपको स्वस्प नहीं हे किन्तु वो वस्तु ही वेसी हे. निज सामर्थ्यसों ही नील भासमान होवे हे.

न्यायके चोबीस गुणन्में जो 'रूप'नामको गुण लिख्यो हे सो ब्रह्ममें नहीं हे. ब्रह्म 'रूप'गुण रहित हे तो भी गम्भीर हे. तासों अपने स्वभावसों ही नील भासमान होवे हे. यामें दृष्टान्त:जेसे अन्धकार तथा आकाश 'रूप'गुण रहित हें तो भी गम्भीर हें तासों अपनी सामर्थ्य करिके ही नील भासमान होवे हें. दृष्टितो रूपकुं ग्रहण करिवे वारी हे. आकाशमें तो रूप नहीं दीखे हे, तब दृष्टि अत्यन्त दूरी गई भई नील रूपकुं जेसो देखे हे तेसे आकाशकुं देखे हे. तासों आकाशमें रूप हे एसें नहीं जाननो किन्तु रूप रहित ही आकाश गम्भीरताके कारण नीलरूप जेसो भासमान होवे हे. एसे ही ब्रह्म गम्भीर हे तासों नीलरूप जेसो भासमान होवे हे. जब आप गम्भीरताकुं नहीं दिखावे हें तब आपको स्वरूप जेसो श्रुतिमें लिखे हें वेसो ही दर्शन्में आवे हे. जेसे ''बदरपाण्डुवदनो मृदुगण्डम्'' (भाग.पुरा.१०।३५।२४) या भागवतके श्लोकमें वर्णन हे. कृष्णचन्द्रके मुखारविन्दके दर्शन व्रजभक्तन्कुं बेरके समान पाण्डुवदन्के अर्थात् पीतगौर भये. इतने विस्तार करिके भगवान् प्राकृतरूप रहित हें तासों नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कुं नहीं देख सके हे ये प्रतिपादित कियो. नेत्र जेसें अन्य वस्तुन्कुं देख सके हे तेसें भगवान्कुं भी देख सकते होंय तो जेसें अन्य पदार्थ नेत्र आदि इन्द्रियन्सों पर नहीं हें तेसें भगवान् भी नेत्रादि इन्द्रियन्सों पर नहीं कहावेंगे तासों नेत्र अपनी सामर्थ्यसों भगवान्कुं नहीं देख सके हें ये सिद्ध भयो. याहीसों ''पराञ्चि खानि'' (कठोप.४।१) या श्रुतिमें उलटी इन्द्रियें ब्रह्मको स्पर्श नहीं कर सके हें ये बात लिखी हे. यासों यह शङ्का नहीं करनी के भगवान्में रूप इन्द्रिय कछु भी नहि हें. तब तो आप जा भक्तकुं दर्शन देनों चाहते होंयगे वाकु भी केसें दर्शन देते होंयगे, क्योंकि दर्शन देनो चाहे हें वाकुं तो हस्त चरणा-रविन्दादिक इन्द्रिय तथा रूपादिगुण सच्चिदानन्दात्मक ही दीखे हें.

याही श्लोककी श्रीगुसांईजीने करी भई व्याख्याको वर्णन करे हें. भगवान्को स्वरूप जेसो अनुग्रह वारे कृपापात्र भक्त देखे हें तेसो ही माननो चहिये. अनेक रूप होयवेसों ब्रह्मपनों नहीं मिटे हे, यामें दृष्टान्त देत हें. जेसो गाढो अर्थात् सघन सैन्धव-लवण बाहिर-भीतरसों एकरस रहे हे एसें ही अनेक रूप वारो ब्रह्म भी सदा एकरस तथा शुद्ध रहे हे.

''पराञ्चि खानि'' (कठोप.४।१) या श्रुतिसों ब्रह्म नहीं दीखे हे एसो तात्पर्य निकसे हे, तासों तो लोकदृष्टिसों नहीं दीखे हे ये बात समुझनी. वामें दृष्टान्त : जेसें सूने घरमें कोई पदार्थ नहीं दीखे हे, क्योंकि वहां दीखवे लायक कोई पदार्थ नहीं हे एसेंही लोकदृष्टि करिके दीखवे लायक पदार्थ लौकिकरूप हे तथा ब्रह्ममें लौकिक रूप नहीं हे तासों लोकदृष्टिसों शून्यके समान ब्रह्म प्रकाशमान नहीं होवे हे.

दर्शन होयवेके दो प्रकार हें. एक प्रकार तो ये हे के जाके अर्थ भगवान् प्रकट होंय वो दर्शन करि सके हे. दूसरो प्रकार ये हे के जिन जीवन्कुं अन्य मनुष्यन्के समान ही अपनो भी स्वरूप दिखायवेकी भगवान्की इच्छा होवे हे तब अन्य मनुष्य जेसें ही भगवान् भी दीखे हें. तथा जिनके अर्थ प्राकट्य नहीं हे एसे आसुरजीव शास्त्रोक्त ब्रह्मकुं असत् माने हें, अर्थात् झूठो माने हें, उनकुं भगवान् असत् जेसें ही दीखे हें. सूने घरमें कछु नहीं दीखे हे तेसें भगवान् प्रकाशमान नहीं होवे हें, क्योंकि ''मायेत्यसुरास्तं यथायथोपासते'' (मुद्गलोप.३।३) या मण्डल ब्राह्मणकी श्रुतिमें जो जेसी उपासना करे हे वाकुं वेसे ही भगवान् भासमान होवे हें एसे लिख्यो हे. अथवा 'शून्य'नाम अन्धकारको हे. जेसे अन्धकार वारे घरमें दिया विना धरी भई वस्तु भी नहीं दीखे हे एसें अनुग्रह विना अवतार समयमें विद्यमान भी भगवान् नहीं दीखे हें. जा समय अवतार नहीं होय वा समय तो स्वरूप प्रकट नहि हे तासों रूप रहित आकाश जेसें नहीं दीखे हे तेसें भगवान् भी नहीं दीखे हें. वहां इच्छाकुं ही रूपके ठिकानें समुझनो. जेसें रूप नहीं होय तो पदार्थ नहीं दीख सके हे तेसें इच्छा नहीं होय तो भगवान् नहीं दीख सके हें. अन्य लोगन्कों दृष्टि करिके ही जब आप अपनो रूप दिखानो चाहे हें तब भगवदनुग्रह भगवदिच्छा करिके लोकदृष्टि भी हरिको स्पर्श करे हे. जेसें महाभारतमें अश्वमेघपर्वमें उत्तङ्ककुं लोकदृष्टि करिके ही भगवान्ने दर्शन कराये. उद्योग पर्वमें कौरवन्कुं भी लोकदृष्टि करिके ही दर्शन कराये. या पक्षकुं हृदयमें राखिकें दूसरो अर्थ करे हें. जलसों भरे बादल जेसे श्याम तथा आकाश जेसो श्याम स्वरूप लोकदृष्टि करिके जो प्रतीत होवे हे वो ब्रह्म ही हे, औपाधिक अथवा मायिक नहीं हे, क्योंकि वो वस्तु ही वेसी हे. वस्तु स्वरूप युक्तिकी (उपपत्तिकी) अपेक्षा नहीं करे हे. श्रीकृष्ण यदि शुद्ध परब्रह्म न होते तो ज्ञान रहित पशु-पक्षी-

वृक्षादिकनुकुं प्रकृति–कालसों पर निज स्पकी प्राप्ति नहीं होती. अथवा आप यदि परब्रह्म न होते तो आपकुं अपने शत्रु जानिवे वारे पूतनादि दैत्य प्रकृति–कालातीत भगवान्के स्वस्पकुं नहीं प्राप्त होते.

इन कहे भये प्रकारन्को अपने–अपने अधिकारानुसार उपयोग हे. उत्तमाधिकारीकुं तो पुष्कल ज्ञान सिद्ध होयवेके अर्थ इन सर्वपक्षन्को ज्ञान होनों चाहिये. या प्रकार भगवान्में लौकिक दोषको परिहार कियो।।७५।।

एवं लौकिकत्वदोषं परिहृत्य कर्तृत्वेन वैषम्य–नैर्धृण्ये प्राप्ते परिहरति आत्मसृष्टेः इति.

आत्मसृष्टेर्न वैषम्यं नैर्धृण्यं चापि विद्यते।।
पक्षान्तरेऽपि कर्म स्यान्नियतं तत्पुनर्बृहत्।।७६।।

''स आत्मानं स्यमकुरुत'' (तैत्ति.उप.२।७) इति श्रुतेः. जगति नानाविधान् सृजन्नपि न विषमो भवति. नापि क्रूरं कर्म कुर्वन् निर्धृणो भवति. चकाराद् अन्येऽपि दोषाः परिहियन्ते.

अत्र मतान्तरम् आशङ्क्य परिहरति पक्षान्तरेपि इति. ''वैषम्य–नैर्धृण्ये न सापेक्षत्वात्'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३४) इति बादरायणः तत् कर्मसापेक्षत्वान् न विषमः इति आह. तथा सति कर्म नियतं नियामकं भवेत्. परं तत् कर्म किम्? इति विचारणीयम्. ब्रह्म चेत्, स दोषः तदवस्थः. अन्यश्चेद् ब्रह्मणः तत्सापेक्षत्वाद् असमर्थत्वम्. तद्धेतोरेव अस्तु इति न्यायेन कर्मणएव तत्समाधाने ईश्वरकारणता न सम्भवेत्, हेतुव्यपदेशश्च विरुद्ध्येत. नापि लोकवद् दूषणस्थापनं युक्तम्. अत आत्मसृष्टेः इत्येव हेतुः. सूत्रं तु लोकबुद्ध्यनुसारि. अन्यथा ''फलमत उपपत्तेः'' (ब्रह्मसूत्र३।२।२८) इति अधिक–रणं विरुद्ध्येत।।७६।।

अब भगवान् जगत्के कर्ता हें तो कोई जीवकुं हंस तथा कोई जीवकुं काक बनावे हें एसी विषमता क्यों होनी चहिये? तथा कोईकुं सुखी, कोईकुं दुःखी राखे हें एसो निर्दयपणों क्यों होनो चहिये? इन दोनों दोषन्को परिहार अगाड़ीके श्लोकमें करे हें.

सृष्टि ब्रह्मके स्वस्पसों ही होयवेसुं ब्रह्मकों सृष्टिकर्ता मानिवेमें ब्रह्ममें वैषम्य तथा नैर्घृण्य दोष आयवेकी सम्भावना नहीं हे. एक अन्य मत हे के व्यक्तिके सुख–दुःखके नियामक व्यक्तिके कर्म होय हें. वस्तुविचारसुं, किन्तु, ये कर्म भी ब्रह्म ही हे. ''स आत्मानं स्वयमकुरुत'' (बृहदा.उप.१।४।३) या श्रुतिके अनुसार भगवान् अपने आत्माकुं ही जगद्रूप करे हें. अर्थात् आप ही सर्वस्प होय रहे हें. तासों भगवान् उंची–नीची, गज–गर्दभ आदि अनेक जाति रचते भये भी विषम नहीं कहावे हें. तथा कोईकों सुखी कोईकों दुःखी करते भये भी निर्दय नहीं कहावे हें. क्योंकि लोकमें भी ओरकुं दुःख देवे वारो ही निर्दय कहावे हे, जो समर्थ पुरुष क्रीडाके अर्थ अपनी इच्छा करिके ही कभी राजा कभी कङ्गाल बन जावे तथा कभी सुखी कभी दुःखी बन जावे वाकुं कोई विषम वा निर्दय नहीं कहे हे. एसे ही अवतारन्में जो आसुर जीवन्कुं मोह करायवेके अर्थ युद्धसों भागनो, कहिं अज्ञान दिखा देनों, कहिं भक्तवश होयकें बन्धनमें आय जानों इत्यादि अनेक चरित्रन्कुं दूषणस्प नहीं समुझनो, किन्तु एसे चरित्र क्रीडाके भूषणस्प ही हें.

कितनेक मतवादी कर्मकुं ही सुख–दुःखको देवे वारो माने हें ईश्वरकों नहीं माने हें, उनसों ये पूछनो चहिये के कर्म तो जड पदार्थ हे, सुख–दुःख केसे दे सके हे? कर्मानुसार सुख–दुःख देवे वारो अन्य चेतन पदार्थ मान लेनो चाहिये.

कदाचित् कहोगे कर्मको नियम करिवे वारो अन्य कोई नहीं हे, पहिलेको कर्म ही कर्मको नियम करिवे वारो हे, अर्थात् पूर्व जन्मको सुकर्म या जन्ममें सुकर्ममें प्रवृत्ति करावे हे तथा पूर्व जन्मको कुकर्म या जन्ममें कुकर्ममें प्रवृत्ति करावे हे. ताको ये उत्तर हे के पूर्व कर्म करिकेहि कर्ममें प्रवृत्ति होय जाती होय तो वेदके विधिवाक्यन्को कर्ममें प्रवृत्ति करवानो वृथा हो जायगो, तासों उन वाक्यन्कुं सार्थ करिवेके अर्थ सुकर्ममें प्रवृत्ति करायवे वारे वाक्यन्के आधीन सुकर्मकुं माननो पडेगो तथा

कुकर्मको निषेध करिवे वारे वाक्यन्के आधीन कुकर्मकुं माननों पडेगो तब तो सबही मनुष्य वेदवाक्यन्कुं पढकें अथवा सुनकें सब ही कुकर्मसुं निवृत्त हो जायेंगे तथा सुकर्ममें प्रवृत्त हो जायेंगे, अधर्म कोई भी नहीं करेंगे. तब तो नरक बनानों भी वृथा होयगो. अधर्मके प्रायश्चित्त बतायवे वारी स्मृतियें वृथा जांयगी, तथा लोककी अधर्ममें प्रवृत्ति होय रही हे सोभी नहीं होनी चाहिये. तासों धर्माधर्मके स्वस्प जानवेवारे मनुष्यकुं भी निज इच्छाके अनुसार पुण्य-पापमें प्रवृत्ति निवृत्ति करायवे वारो स्वतन्त्र कर्ता ईश्वर अवश्य माननो चहिये.

शङ्का : कितनेक मतवादी कहे हें के ईश्वरतो कर्मके अनुसार सुख-दुःख देत हे. यासों उनके मतमें ईश्वर कर्मके आधीन भयो, ईश्वर समर्थ नहीं भयो, तासों कर्मन्कुं ही सुख-दुःखके मुख्य हेतु-कारण माननों उचित हे.

समाधान : यदि ये मत उचित हे तब तो ''ईश्वर ही सुखदुःखको देवेवारो हे'' या रीतसों कहिवे वारी सब स्मृति व्यर्थ भई. जेसें गीताजीमें ''सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च, भवन्ति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः'' (भग.गीता१०।५) अर्थ : कृष्ण कहे हें प्राणिमात्रके सुख दुःख भय अभय मेरे करे भये होवे हें. तथा ''स एव साधु कर्म कारयति'' (कौषि.उप.३।८) या श्रुतिमें जा जीवकुं उपरके लोकमें लेजायवेकी इच्छा होवे हे वासों सुकर्म करवावे हें तथा जा जीवकुं नीचेके लोकमें लेजावेकी इच्छा होवे हे वासों कुकर्म करवावे हें ये लिखी हे ताको विरोध आयगो. तासों आत्मसृष्टिपक्ष माननों, लौकिक ईश्वर एसे राजादिकन्के समान सर्वेश्वर भगवान्में दोष नहीं लगावनो. ''वैषम्य-नैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात्'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३४) ये सूत्र तो लोकबुद्धिके अनुसार हे. जो या सूत्रको अर्थ वादीके मतके अनुसार मानोगे तो ''फलमतः'' (ब्रह्मसूत्र३।२।३८) या सूत्रमें भग-वान् ही सुख-दुःखादि सब फलके दाता हें ये बात लिखी हे तासों विरोध आवेगो।।७६।।

ननु अस्तु सापेक्षएव कर्ता, सगुणत्वाद् इति आशङ्क्य आह स एव हि जगत्कर्ता इति.

स एव हि जगत्कर्ता तथापि सगुणो न हि।।
गुणाभिमानिनो ये हि तदंशाः सगुणाः स्मृताः।।
कर्ता स्वतन्त्रएव स्यात् सगुणत्वे विरुद्ध्यते।।७७।।

यस्तु उच्चावचं सृजति सएव जगत्कर्ता. नापि सगुणः. हेतु सिद्ध्यर्थं सगुणस्य लक्षणम् आह गुणाभिमानिनः इति. गुणैः कृत्वा अभिमानिनः. अनेन देहेन्द्रियाभिमानाभावेऽपि गुणाभिमानमात्रेणैव सगुणत्वम्. ते गुणाः सृष्ट्यादिहे-तवः. अनधिष्ठिताः पुनः न कुर्वन्तीति गुणाधिष्ठात्र्यो देवताः ब्रह्मादयः सगुणाः उच्यन्ते. तेषां स्वातन्त्र्यम् आशङ्क्य आह तदंशा इति. तत्र प्रमाणं, स्मृता इति. स्मृति-पुराणेषु तथा प्रसिद्धेः इति अर्थः. भगवांस्तु सर्वात्मा सर्वनि-यन्तामूलकर्तेति न सगुणः.बाधकम् आह कर्तास्वतन्त्रएवस्याद् इति।।७७।।

शङ्का : सगुण हे तासों कर्मसापेक्ष ईश्वर ही कर्ता होवे हे. अभिप्राय ये हे के गुणाधीन होयवेसों जेसें ईश्वरताकी हानि नहीं हे तेसें कर्माधीन होयवेसों भी ईश्वरताकी हानि नहीं होवे हे.

श्लोकार्थ : वो शुद्ध ब्रह्म ही जगत्कर्ता हे. कर्ता होते भये भी वो सगुण नहीं हे. जिन गुणाभिमानी देवतान्कुं स्मृति-पुराणादिमें सगुण कहे हें वे शुद्ध ब्रह्मके अंश हें. कर्ता वो ही हो सके हे जो स्वतन्त्र होय. सगुणको कर्तृत्वसों विरोध हे, अतः ब्रह्मकु सगुण मान लेवेसुं वाकुं स्वतन्त्र नहीं कह्यो जा सकेगो फलतः वाकु कर्ता नहीं मान्यो जा सकेगो.

उत्तर : जो उच्चावच सृष्टिकों सृजें हे वो ही जगत्कर्ता हे, परन्तु सगुण नहीं हे. गुणन् करिके अभिमानी जे ब्रह्मादिक देवता हें वे ही सगुण कहावें हे. यद्यपि ''हम देहेन्द्रिय वारे हें'' एसो अभिमान ब्रह्मादिकन्कुं नहीं हे तथापि विना अधिष्ठाता देवताके सत्व-रजस्-तमोगुण स्वयं सृष्टिकार्य नहीं कर सकें हे तासों गुणके अभिमानी ब्रह्मादिक देवता हें, वे ही गुणन्के अधिष्ठाता

देवता हे, वे ही सगुण कहावे हें. वे सब देवता ब्रह्मके अंशस्प हें अतः परतन्त्र हें ये बात ''यस्य प्रसादजो ब्रह्मा रुद्रः क्रोधसमुद्भवः''–''आदावभूच्छतधृती रजसास्य सर्गे विष्णुः'' इत्यादि पुराण–स्मृतिमें प्रसिद्ध हे।।७७।।

एवं स्वमतं स्थापयित्वा परमतनिराकरणाय भगवन्तं सगुणं मन्यमानान् उपहसति केचिदत्र इति.

केचिदत्रातिविमलप्रज्ञाः श्रौतार्थबाधनम्।।
कृत्वा जगत्कारणतां दूषयन्ति परे हरौ।।७८।।

अतिक्रान्ता विमला प्रज्ञा येभ्यः. तत्र हेतुम् आह श्रौतार्थबाधनम् इति. श्रुत्या अभिधया वृत्त्या यो अर्थः प्रतिपाद्यते प्रकरणानुरोधेन सएव श्रुत्यर्थः. तत्र ''सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'' (छान्दो.उप.६।२।१) ''आत्मा वा इदमेवाग्र आसीत्'' (ऐत.उप.१।१) ''ब्रह्मविदाप्नोति परम्''(तैत्ति.उप.२।१) ''भृगुर्वै वारुणिः'' (तैत्ति.उप.३।१) इत्यादिब्रह्मप्रकरणेषु निःसन्दिग्धेषु, ब्रह्मणएव केवलस्य जगत्कारणत्वं प्रतिपादितम्. तत्सामान्याद् इतरेष्वपि सन्दिग्धेषु व्यासैः सूत्रेषु तथैव अर्थो निर्णीतः. तद् उभयं बाधित्वा वाक्याभासं युक्त्याभासञ्च पुरस्कृत्य ब्रह्मणो जगत्कारणतां दूषयन्ति. परे हरौ पुरुषोत्तमः परं ब्रह्म इति यावत्।।७८।।

भगवान् तो सर्वात्मा स्प हें तासों गुणस्प भी आप ही हें. सबके नियन्ता हें. मूलकर्ता हें तासों सगुण नहीं हें. भगवान् यदि सगुण होवें तो गुणाधीन होयवेसों स्वतन्त्र कर्तापनो जो श्रुतिपुराणन्में लिखो हें तासों विरोध आवेगो.

कितनेके अतिविमलबुद्धि वारे, अर्थात् निर्मलबुद्धि जिनको उल्लङ्घन कर गई हे एसे पुरुष पहिले ब्रह्मकुं जगत्को कारण मान करिके कारणताको खण्डन करें हे. शुद्ध ब्रह्म हि जगत्को कर्त्ता हे ये जो श्रुतिन्को मुख्य अर्थ हे ताकुं नहीं माने हें.

तहां छान्दोग्य उपनिषद्में ''सदेव सौम्येदमग्र आसीत्'' (छान्दो.उप.६।२।१) या श्रुतिमें जगत्की उत्पत्तिके पहिले अप्रकट स्वस्प केवल सद्रूप एक परब्रह्मको ही वर्णन करिके शुद्ध ब्रह्मसों ही तेज आदि पदार्थन्की उत्पत्ति कही हे तासों शुद्ध ब्रह्म ही जगत्को बीज हे ये सिद्ध होवे हे. ऐतरेय उपनिषद्में भी परमात्मासों ही जल आदि पदार्थन्के क्रमसों लोकपालादिकन्की सृष्टि कही हे. एसें ही तैत्तिरीय उपनिषद्में ब्रह्म सच्चिदानन्दस्प हे एसे लक्षण कहिकें ''तस्मादात्मन आकाशः सम्भूतः'' (तैत्ति.उप.२।१।१) वा ही शुद्ध सच्चिदानन्दस्वस्प परब्रह्मसों आकाश आदि सब जगत्की उत्पत्ति वर्णन करी हे. इन वाक्यन्में माया शबलित ब्रह्मसों जगत्की उत्पत्ति कहीं नहीं वर्णन करी हे. तासों व्यासजीने शुद्ध परब्रह्मकुं ही जगत्कारण कह्यो हे. तथा इन वाक्यन्के समान जिन वाक्यन्में आकाश प्राण आदिकन्सों सृष्टि वर्णन करी हे उन वाक्यन्में भी ''आकाशस्तल्लिङ्गात् अतएवप्राणः'' (ब्रह्मसूत्र१।१।२२) इत्यादि सूत्रन् करिके 'आकाश' 'प्राण' आदि शब्दन्कों ब्रह्मके वाचक कहि शुद्ध ब्रह्म ही जगत्को कारण हे ये सिद्धान्त जतायो।।७८।।

तर्हि किं कारणम्? इति आकाङ्क्षायाम् आह अनाद्यविद्यया इति.

अनाद्यविद्यया बद्धं ब्रह्म तत्किल कारणम्।।

अनादिः अविद्या ''अहम् अज्ञः'' इति अनुभवसिद्धा भावस्पा. तेन बद्धं चैतन्यं तदध्यासाद् एतादृशं जगत्कारणम्. कार्यानुस्पस्यैव कारणस्य युक्तत्वात्. कार्यन्तु जगत्, जडात्मकं हेयं तुच्छनिष्ठम्, अतः कारणेनापि तथायुक्तेन भाव्यम् इति युक्त्याभासः. वस्तुतस्तु ''सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्'' (तैत्ति.उप.२।६) इति ''स आत्मानं स्वयमकुरुत'' (तैत्ति.उप.२।७) इति ''प्रजायेय'' (तैत्ति.उप.२।६) इत्यादिवाक्यैः स्वतःप्रमाणभूतैः निःसन्दिग्धं प्रतिपाद्यते कार्यस्पस्य जगतो ब्रह्मात्वम्.कुत्सितत्वं न क्वचिदपि ब्रह्मविदां हृदये भासते, यथा स्वाङ्गे पुरुषस्य. पृथग्भानएव तथा प्रतीतेः. अन्यथा बीजादीनां ब्रह्मत्वकथनं मलदृष्टान्तेन बाधितं स्यात्. तथा सति सर्वसन्मार्गनाशः. तथा वाक्याभासाः, ''इन्द्रो मायाभिः पुरुस्प ईयते'' (बृहदा.उप.२।५।१९) ''अमृतापिधानाः'' (छान्दो.उप.३।८।१) ''वाचारम्भणं विकारः'' (छान्दो.उप.६।१।४) ''मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'' (श्वेता.उप.४।१०) इत्यादयः. एतेषां पदार्थप्राया माया

वाक्यविरोधेन न वाक्यार्थे सङ्गच्छते. तथा च यथायथं 'माया'शब्देन क्वचिद् इन्द्रियवृत्तिः, क्वचित् प्रथमं कार्यं सूक्ष्मम्. 'अनृत'शब्देन देहेन्द्रियादिकं ''सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्'' (तैत्ति.उप.२।६) इति ब्रह्मणएव देहेन्द्रियादिस्पत्वम् आत्मस्पत्वञ्च. नतु अत्र स्वप्नादिदृष्टान्तेन मिथ्यात्वं वक्तुं शक्यते, बाधश्रवणाच्च. ''मिथ्यादृष्टिर् नास्तिकता'' ''मायेत्यसुराः'' ''असत्यम् अप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्'' (भग.गीता१६।८) इत्यादिवाक्यैः. साधकानि च सहस्रशो वाक्यानि सन्ति, ''सभूतं स भव्यम्'' (महाना.उप.१७।१३) इति ''हरिरेव जगद्'' इत्यादीनि. अतो बाधितोऽपि अविद्यावादः केषाञ्चिद् हृदये शमादिरहितानां चित्तदोषेण ''जगद् दुष्टम्'' इति पश्यतां प्रतिभातीति आह किल इति.

तन्मते बन्ध–मोक्षौ निस्पयति स्वाविद्यया इति.

स्वाविद्यया संसरति मुक्तिः कल्पितवाक्यतः।।७९।।

चैतन्यमात्रनिष्ठया जलावरणमलस्पया आत्मानं बहिर्मुखः संसारिणं मन्यते. तस्य च मोक्षः तेनैव विद्यावत्त्वेनैव कल्पितगुरोः उपदेशवाक्याद् इति।।७९।।

मायावादी श्रुति–सूत्रन्के मुख्य अर्थकुं नहीं मानें हे. याको बाध करिके मिथ्यावाक्य मिथ्यायुक्तिन् करिके ब्रह्मके जगत्कर्तापनेमें दोष लगावे हें. परब्रह्मकुं कारण नहीं माने हें. तब वे लोग जगत् बनायवे वारो कौनकुं माने हें? या आशङ्काकुं दूर करिवेके अर्थ मायावादी मतको वर्णन करें हें:

अनादि जो अविद्या अर्थात् जाको आदि नहीं हे एसे भावस्प अज्ञान करिके बंध्यो भयो जो साकार चैतन्य वो या जगत्को कारण हे. जेसो कार्य होवे हे कारण भी वाहीके अनुकूल वेसो ही होवे हे. कार्य जगत् जडस्प तथा हेय हे, कदर्य उत्पत्ति अन्तवारो हे. तासों कारण भी वेसो ही जड–हेय–तुच्छनिष्ठ होनो चहिये ये उनकी मिथ्या युक्ति हे.

सिद्धान्ततो ये हे : वेदव्यासजी महाराजनें ब्रह्मसूत्रन्में श्रुतिन्कुं ही प्रमाण मानी हे. लौकिक युक्तिन्कुं प्रमाण नहीं मानी हे. श्रुतिन्में ब्रह्मकुं कारण बतायो हे. ''सत्यञ्चानृतञ्च सत्यमभवत्'' (तैत्ति.उप.२।६) या श्रुतिमें कार्यको भी ब्रह्मत्व कह्यो हे ''स आत्मानं स्वयमकुरुत'' (बृहदा.उप.१।४।३) या श्रुतिमें भगवान्नें अपने आत्माकुंही जगत्स्प कियो ये बात लिखी हे ''बहुस्यां प्रजायेय'' (तैत्ति.उप.२।६) या श्रुतिमें भगवान् ही बहुत स्प वारे होयवेकी इच्छा करते भये ये बात लिखी हे. उच्च–नीचादि भाव जगत्में दीखें हें तथापि ब्रह्ममें काहु प्रकारको दोष नहीं हे ये बात जताई. स्वयं प्रमाण वेदवाक्यन्सों कार्यस्प जगत्कुं ब्रह्मपनों सिद्ध कियो या ही कारण ब्रह्मज्ञानीन्कुं जगत्को तुच्छपनो अथवा कुत्सितपनो नहीं दीखे हे, निर्दोष ब्रह्मस्प ही दीखे हे. परन्तु जिनकी अविद्या दूर नहीं भई हे उन मनुष्यन्कुं ही जगत्में कुत्सितपनो आदि अनेक दोष दीखे हें. जेसें श्वेत शङ्ख पीलीया वारे मनुष्यकुं पीलो दीखे हे परन्तु शङ्ख तो सफेद ही हे याही प्रकार जगत तो ब्रह्मस्प ही हे, अज्ञानी लोगन्कुं अविद्या करिके अनेक दोषवारो दीखे हे. जेसें पुरुषकुं अपने अङ्गन्में कुत्सित्पनो नहीं मालुम पडे हे एसें ही ब्रह्मके साथ जगत्को अभेद मानवे वारे ज्ञानीन्कुं जगत् कुत्सित नहीं प्रतीत होवे हे. जहां भेद हे तहां ही कुत्सितत्वादि दोष प्रतीत होवे हें. जगत्कुं यदि कुत्सित मानोगे तो छान्दोग्यमें तथा गीतामें ''बीजं मां सर्वभूतानाम्'' (भग.गीता७।१०) या श्लोकमें बीजन्की ब्रह्मस्पता लिखी हे सो नहीं बन सकेगी. क्योंके जगतस्पी वृक्षकुं यदि कुत्सित–तुच्छ मानोगे तो जीवज, अण्डज तथा अन्नमय बीजकी मलतुल्यता भी कह सकेंगे, तो ब्रह्मपनो नहीं होयेगो. अर्थात् जगद्रूप वृक्षकुं तुच्छ मानोगे तो जगत्को बीज ब्रह्म भी तुच्छ भयो, तब तो ब्रह्मज्ञान होयवेके अर्थ पञ्चाग्निविद्याके साधक जो श्रौतयज्ञादिकर्म तथा स्मृतिके बनाये ज्ञान होयवेके उपाय वृथा ही होंयगे. तब तो सब सन्मार्गको नाश होयगो इति.

आगे ईश्वरकों मायाकृत बन्ध होयवेमें मायावादीके मतानुसार प्रमाण दिखावे हें ''इन्द्रो मायाभिः पुरुस्प ईयते'' (बृहदा.उप.२।५।१५). माया करिके बहुतस्प जाके हो रहे हें एसो परमेश्वर द्रष्टिगोचर होवे हे, या रीतिको या वाक्यको अर्थ मायावादी करे हें. परन्तु याको एसो अर्थ नहीं हे, अनेक स्पवारो परमेश्वर माया करिके अर्थात् नेत्रादि इन्द्रियजन्य बुद्धिकी

वृत्तिन् करिके दर्शन्में आवे हे या रीतिको अर्थ हे. क्योंके या श्रुतिमें पहिलेके दोय पदमें विना ही माया बहुत स्प धारण करनो लिख्यो हे तासों बहुत स्प धारण करिवेमें माया कारण नहीं हे, बहुस्प वारे परमेश्वरके देखिवेमें माया सहायक मात्र हे.

ऐसेंही ''मायान्तु प्रकृतिं विद्यात् मायिनन्तु महेश्वरम्'' (श्वेता.उप.४।१०) अर्थ:माया प्रकृतिसों कहे हें, प्रकृति सहित परमेश्वरकुं मायी जाननो. या वाक्यमें सत्य प्रकृतिको ग्रहण करनो मिथ्या मायाको ग्रहण नहीं करनो, क्योंके एकादशस्कन्धमें ''प्रकृतिर्ह्यस्योपादानम्'' (भाग.पुरा.११।२४।१९) या श्लोकमें प्रकृति-पुरुष-कालकुं भगवद्रूपता लिखी हे. ''अनृतापिधानाः'' ये श्रुति भी जगत्कुं मिथ्या नहीं कहे हे किन्तु दहरज्ञानीके मनोरथ अनृत करके अर्थात् देहेन्द्रियादिकन् करिके ढके भये इत्यादि अर्थकों कहे हे.

ऐसें ही 'वाचारम्भण' श्रुतिको भी कार्यकुं कारणात्मा मानिकें वाकुं सत्य कहिवेमें ही तात्पर्य हे. 'माया'शब्दके क्रिया, दम्भ, बुद्धि आदि अनेक अर्थ अनेकार्थकोशमें लिखे हें. वेदनिघण्टुमें माया, अभिख्या, वयुन इनकुं बुद्धिके नाम कहे हें. बुद्धि हे सो न्यारी-न्यारी इन्द्रियन् करिके नानाप्रकारकी होवे हे तासों ''मायाभिः'' (बृहदा.उप.२।५।१५) ये बहुवचन हे. ''मायां तु प्रकृतिम्'' (श्वेता.उप.४।१०) या वाक्यमें 'माया'नाम सृष्टिके आरम्भमें जो सूक्ष्म कार्य हे वाको हे. 'अनृत'नाम देहेन्द्रियादिककको हे. यहां 'अनृत'नाम यदि मिथ्याको होय तो मिथ्या होय सो सत्य नहीं होय सके हे. येां तो आगेकी श्रुति ''सत्यश्चानृतश्च सत्यमभवत्'' में अनृत तथा सत्यस्प होते भये ये बात लिखी हे. तासों या वाक्यको एसो अर्थ करनो ''अनृत जो देहन्द्रियादिक, सत्य जो जीवात्मा दोनोंस्प सत्य जो ब्रह्म हे सो ही होतो भयो''. याके आदिमें भगवान् बहुस्प होयवेकी इच्छा करते भये ऐसें लिखी हे. अन्त्यमें ''सत्यमभवत्'' अर्थात् सत्य ही होतो भयो ये लिखी हे. 'अनृत'शब्दकुं यदि मिथ्यावाची मानोगे तो आद्यन्तसों विरोध आवेगो. तासों स्वप्नके द्रष्टान्तसों जगत्कुं भ्रमस्प नहीं मान लेनो. ''असत्यम् अप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम्'' (भग.गीता१६।८) या गीतावाक्यमें जगत्कुं असत्य मानवेवारेनकुं आसुरजीव कह्यो हे. तथा ''यद्भूतं यच्च भव्यम्'' (ऋग्वेद.मण्ड.१०।९०।२) ''हरिरेव जगत्सर्वम्'' इत्यादि सहस्रवाक्यन्में जगत् भगवद्रूप मान्यो हे. या प्रकार अनेक प्रमाणन्सों खण्डन कियो भयो भी अविद्यावाद चित्तदोष करिके जगत्कुं दोष सहित मानवे वारे शमदमादि साधन रहित पुरुषन्के हृदयसों दूर नहीं होवे हे, उनके हृदयमें वेसो ही भासमान होतो रहे हे.

मायावादीके अनुसार बन्ध-मोक्ष दिखावे हें.

उनके मतमें प्रदेशविशेषमें जलको जो आवरण मल ताके स्थानापन्न अविद्या करिके निष्फल ब्रह्म अपने स्वस्पको ज्ञान भूल जावे हे तब बहिर्मुख होयके आपुन्कों संसारी माने हे ये ही बन्ध हे. मूल अज्ञानसों छूट जानो ही मोक्ष मानें हे. कल्पना करिके ज्ञानवान् माने गये गुरुके उपदेशवाक्यकों ही मोक्षको साधन माने हें तथा जितने लौकिक-वैदिक यज्ञ, भक्ति आदि साधनन्कुं भ्रमात्मक जगन्मध्यपाति मानिके मिथ्या बतावे हें।।७९।।

ननु एवमेव अस्तु शास्त्रार्थः, को दोषः? इति चेत् तत्र आह एवं प्रतारणाशास्त्रम् इति.

एवं प्रतारणाशास्त्रं सर्वमाहात्म्यनाशकम्।।
उपेक्ष्यं भगवद्भक्तैः श्रुति-स्मृतिविरोधतः।।

यथा प्राणिनो भगवद्विमुखाः भवन्ति तथोपायो रचितः. नतु अत्र किञ्चित् ज्ञातव्यम् अस्ति. तत्र हेतुम् आह सर्वमाहात्म्यनाशकम् इति. यद्धि सर्वोपास्यं तस्य माहात्म्यं नाशयति, सर्वेश्वरः सर्वकर्त्ता सर्वकारणस्पः इत्यादिस्पम्. तर्हि एतन्मतं सर्वं लिखित्वा दूषणीयम् इति चेत्, न, इति आह उपेक्ष्यम् इति. असद्भावनया स्वस्यापि बुद्धिनाशः स्यात् अतः तत्र उपेक्षैव कर्तव्या सुतरां भगवद्भक्तैः, भक्तिमार्गविरोधात्. दूषणम् आह श्रुतिस्मृतिविरोधतः इति. स्वप्रकरणपठितैः ''आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'' (तैत्ति.उप.३।६) इति ''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलस्तथा''(भग.गीता७।६) इति वाक्यसहस्रैः मायावादो विरुद्ध्यते.

सर्वेषाम् आदरान्यथानुपपत्तिं परिहरति कलौ तदादरो मुख्यः इति.

कलौ तदादरो मुख्यः फलं वैमुख्यतस्तमः।।८०।।

तत्रापि हेतुः फलं वैमुख्यतः इति. भगवद्वैमुख्यात् तमो भावि।।८०।।

या रीतिको मोह करायवे वारो शास्त्र प्राणिनकुं भगवान्सों विमुख करिवेके अर्थ बनायो हे. या रीतिके शास्त्रमें कोई भी बात जानिवे योग्य नहीं हे. भगवान् सबके ईश्वर हें, सबके कर्ता हें, कारणके भी कारण हें या रीतके सर्वोपास्य पुरुषोत्तमके माहात्म्यको नाश करिवेवारो ये मायावाद भक्तिमार्गको विरोधि हे, तासों भगवद्भक्तनकुं या मतकी उपेक्षा कर देनी चहिये.

या मायावादमें ''आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते'' (तैत्ति.उप.३।६) ''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा'' (भग.गीता१०।८) इत्यादि हजारन् वाक्यको विरोध हे. कलियुगमें या मतको बहुत आदर हे, या करिके आसुरजीव भगवान्सों विमुख होयकें तमके भागी होंयगे।।८०।।

ननु स्वात्मज्ञानान् मोक्षः सिद्ध्यत्विति प्रपञ्चनिवृत्त्यर्थं प्रपञ्चस्य अज्ञानकार्यत्वम् उच्यते.

ज्ञाननाश्यत्वसिद्ध्यर्थं यदेतद् विनिस्पितम्।।

तदन्यथैव संसिद्धिं विद्याऽविद्यानिस्पणैः।।८१।।

यतो ज्ञानम् अज्ञानस्यैव नाशकमिति सकार्याम् अविद्यां विद्या नाशयत्विति जगतो मायिकत्वं प्रतिपाद्यते, इति चेत्, तत्र आह तदन्यथैव संसिद्धम् इति. नहि ब्रह्मविद्यायां प्रपञ्चविलयो अपेक्ष्यते. तथा सति प्रलयवत् सर्वेषाम् अनादरणीयता स्यात्. अतो विद्याविद्यानिस्पणैः साधनशास्त्रैरेव अन्यथासिद्धमिति न तदर्थं प्रपञ्चविलयो वक्तव्यः. ''विद्याञ्चाविद्याञ्च'' (ईशोप.११) इत्यादि श्रुतयो अत्र अनुसन्धेयाः. हृदये स्वयं भासमानो भगवान् मोक्षं दास्यति, किं प्रपञ्चविलयेन? इति भावः।।८१।।

शङ्काःआत्मज्ञानसों मोक्ष होवे हे. यासों विद्या अर्थात् ज्ञान हे सो जगद्रूप कार्य सहित अविद्याको नाश करे हे. जगत्कुं मायिक अर्थात् अविद्याको कार्य मानें हे, क्योंके जगत् यदि अविद्याको कार्य न होय तो ज्ञानसों केसें निवृत्त होय.

उत्तरःअविद्याको कार्य अहन्ता-ममतास्प संसार ही हे, जगत् अविद्याको कार्य नहीं हे. एवञ्च विद्या अर्थात् ज्ञानसों भी अहन्ता-ममतास्प संसारको ही नाश होवे हे, जगत्को नाश ज्ञानसों नहीं होय हे. ब्रह्मज्ञानमें जगत्के लय होयवेकी अपेक्षा नहीं हे. एसें ही होतो तो जेसें प्रलयकु कोई पुरुषार्थ नहीं समुझे हे एसे ही ब्रह्मविद्या भी अनादर करिवेयोग्य होय जायगी तासों विद्यासों अविद्याकी निवृत्ति करिवेवारे शास्त्रनसों प्राप्त होतो ज्ञान अज्ञानत्मक अहन्ता-ममतास्प संसारकी निवृत्ति करे हे ये ही बात सिद्ध होय हे. अतः मोक्षको अर्थःजगत्को लय होनो एसे नहीं कहेनो चहिये. ''विद्याञ्चाविद्याञ्च'' (ईशोपनि.११) या श्रुतिके अन्तमें भी ''विद्ययामृतमश्नुते'' या वाक्यमें ब्रह्मसाक्षात्कार करिके अमृत-मोक्षकी प्राप्ति लिखी हे. तासों हृदयमें भासमान भये भगवान् स्वयं मोक्ष देंयगे, जगत्के लय होयवेसों कहा प्रयोजन हे?।।८१।।

ननु पुराणेषु मायिकत्वं श्रूयते प्रपञ्चस्य ''विद्धि माया मनोमयम्'' (भाग.पुरा.११।७।७) ''त्वय्युद्धवाश्रयति'' (भाग.पुरा.११।१९।७) इत्यादिषु. ततो लाघवात् मायावादएव बुद्धिसौकर्याद् अङ्गीकर्तव्यः इति आह यन्मायिकत्वकथनम् इति.

यन्मायिकत्वकथनं पुराणेषु प्रदृश्यते।।

तदैन्द्रजालपक्षेण मतान्तरमिति ध्रुवम्।।

एवम् अनूद्य परिहरति तदैन्द्रजालपक्षेण इति. सृष्टिभेदेषु ऐन्द्रजालपक्षो निरूपितः. सएव पुराणेषु वैराग्यार्थं निरूप्यते. अतो न वस्तुनिरूपकं किन्तु तन्मतान्तरम् असुरव्यामोहजनकम्. पुराणानि भगवल्लीलाप्रतिपादकानि भगवच्चरित्रवद् दैत्यानं मोहम् उत्पादयन्ति.

एवमेवेति अत्र उपपत्तिम् आह नास्ति श्रुतिषु इति.

नास्ति श्रुतिषु तद्वार्ता दृश्यमानासु कुत्रचित्।।८२।।

यदि जगतो मायिकत्वं ज्ञानार्थं कर्मार्थं वा अभिमतं स्यात् तदा काण्डद्वयमध्ये क्वचिदुक्तं स्यात्. ननु सर्वे वेदाः त्वया न ज्ञायन्तइति कथं ज्ञायते न उक्तम्? इति चेत् तत्र आह दृश्यमानासु इति. एकादशशाखाः साम्प्रतं प्रचरन्ति, तासु न दृश्यते इति अर्थः।।८२।।

पुराणन्में जो कहुं-कहुं ''विद्धि मायामनोमयम्'' (भगा.पुरा.११।७।७) ''त्वय्युद्धवाश्रयति यस्त्रिविधो विकारः'' (भाग.पुरा.११।१९।७) इत्यादि स्थलन्में जगत्कुं मायिक बतायो हे सो या ग्रन्थमें पहिले कहे भये वैदिक सृष्टिके प्रकारन्में इन्द्रजालके समान जो सृष्टिको प्रकार लिख्यो हे–जा सृष्टिके भगवान् उपादान कारण नहीं हे केवल मायाद्वाराही होय हे–वो भगवान्को वैराग्यगुण दिखायवेके अर्थ कियो हे. वाही मिथ्या सृष्टिको निरूपण पुराणन्में कहुं-कहुं हे सो लोग जगत्कुं मिथ्या समुझिके अहन्ता-ममता छोड देंगे तो उनकुं वैराग्य सिद्ध हो जायगो याके अर्थ कियो हे.

या पक्षसों पदार्थको ज्ञान नहीं होय हे किन्तु ये मतान्तर हे, आसुरजीवन्कुं मोहजनक हे. भगवल्लीलाके कहिवे वारे पुराण अवतारन्में आसुरजीवन्की भक्ति जा तरेहसुं नहीं होय वा तरेहसुं मोहक चरित्रको वर्णन करे हें. जेसें शाल्व दैत्यके लाये भये मिथ्या वसुदेवके मस्तकको खण्डन देखिके श्रीकृष्णको शोच करनो मतान्तरके अभिप्रायसों शुकदेवजीनें भागवतमें लिखिकें वाको खण्डन कर दीनो हे एसें ही जगन्मिथ्यापक्ष लिखिके पुराण दैत्यन्कुं मोह करावे हें. जगत्के मिथ्यापनेको ज्ञानमें अथवा कर्ममें उपयोग होय तो वेदके दोउ काण्डमें लिख्यो दीखवेमें आनो चहिये. कदाचित् कहोगे के सब वेदकों आप जानो नहीं हो तब केसें मालुम पडी के वेदमें नहीं लिख्यो हे?

तहां आप आज्ञा करे हें के या समयमें वेदकी ग्यारह शाखाको प्रचार हे. उनमें कहुं नहीं लिख्यो हे. उन शाखान्के नाम या प्रकारहें:

१.तैत्तिरी २.काण्वी ३.माध्यन्दिनी ४.मैत्रायणी ५.मानवी ये पांच यजुर्वेदकी शाखा हें. हिरण्यकेशी तैत्तिरीको ही नामहे.
६.शांखायनी ७.आश्वलायनी ये दो ऋग्वेदकी शाखाहें. ८.कौथुमी ९.राणायनी ये दो सामवेदकी शाखाहें. १०.शौनकी तथा ११.पैप्पलादी ये दो शाखा अथर्ववेदकी हें।।८२।।

ननु अस्ति सामशाखायाम् उत्तरकाण्डे वाचारम्भणवाक्यम् इति चेत् तत्र आह वाचारम्भणवाक्यानि इति.

वाचरम्भणवाक्यानि तदनन्यत्वबोधनात्।।
न मिथ्यात्वाय कल्प्यन्ते जगतो व्यासगौरवात्।।८३।।

अत्र उपक्रमे ''कतमः स आदेशः'' (छान्दो.उप.६।१।३) इति प्रश्ने ''यथैकेन मृत्पिण्डेन'' (छान्दो.उप.६।१।४) इत्यादिदृष्टान्तैः सामान्यलक्षणाप्रत्यासत्तिरिव निरूपिता. दृष्टान्ते कार्य-कारणयोः उभयोरपि प्रत्यक्षत्वम्, दार्ष्टान्तिकेषु कार्यं प्रत्यक्षसिद्धं, कारणं श्रुतिसिद्धम्, कारणताप्रकारश्च. तत्र कार्य-कारणयोः अभेदो बोधनीयः. अन्यथा एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं न स्यात्, प्रकारभेदानाम् अज्ञानात्. अतः कार्यप्रकाराः व्यवहारार्थं वाचा सङ्केतिता घटः, पटः इत्यादयः, नतु तेन रूपेण तेषां वस्तुत्वम्. तथा सति एकविज्ञानेन सर्वविज्ञानं न भवेत्. सत्यता तु ''मृत्तिकेत्येव'' (छान्दो.उप.६।१।४) इति कारणत्वेनैव. अतः कार्याणां तदनन्यत्वमेव श्रुत्या बोध्यते, नतु मिथ्यात्वं, शुक्तिरजतवत्. अन्यथा शुक्तिरजतादिकमेव दृष्टान्तीक्रियते. नापि तत्र सामान्यलक्षणा सम्भवति, भ्रमाणाम् अनन्तत्वात्. तस्माद् वाचारम्भणवाक्यानि जगतो मिथ्यात्वाय न कल्प्यन्ते. तथैव आह सूत्रकारः ''तदनन्यत्वम् आरम्भण-

शब्दादिभ्यः'' (ब्रह्मसूत्र२।१।१४) इति. ननु यथा व्यासो महान् तथा शङ्करादिरपि; ततः तद्विरोधात् कथम् एवं निर्णयः? तत्र आह व्यासगौरवाद् इति. व्यासो अस्माकं गुरुः अतो व्यासाभिप्रेतविरुद्धं नाङ्गीक्रियते इति अर्थः।।८३।।

सामवेदकी शाखामें 'वाचरम्भण' श्रुतिसों जगत्को मिथ्यात्व सिद्ध होय हे एसे कहिवे वारे मायावादीके प्रति 'वाचा-रम्भण' श्रुतिको ठीक-ठीक अर्थ दिखावे हें.

''वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्'' या श्रुतिके आरम्भके पूर्व मृत्तिकापिण्डको दृष्टान्त दियो हे. जेसे एक मृत्तिकापिण्डके जानिवेसों जितने माटीके बने पदार्थ हें उनको ज्ञान होवे हे या प्रकार सामान्य रीतिसों ब्रह्मको लक्षण दिखायो. दृष्टान्तमें कारण मृत्तिका तथा कार्य घडा-चप्पन आदि प्रत्यक्ष दीखवेमें आवे हें. जाके अर्थ दृष्टान्त दियो वा दार्ष्टा-न्तिकमें कार्य-जगत्के पदार्थ तो दीखवेमें आवे हे, कारण जो ब्रह्म हे सो केवल शास्त्र मात्रसों जान्यो जाय हे. तथा जेसे मृत्ति-कासों घटको भेद नहीं हे या प्रकार ब्रह्मसों भी जगत् अलग नहीं हे. यदि अलग होय तो ब्रह्मज्ञान् सों जगत्को ज्ञान नहीं होय सके. अनेक घट-पट आदि पदार्थन्कुं व्यवहारमें लायवेके अर्थ ''एसो होय तासों घडा कहनो''-''एसो होय तासों कूंडा कहनो'' या रीतिसों नाम धरि दीने हें. विचारपूर्वक देख्यो जाय तो ये सब मृत्तिका ही हे, तासों ''मृत्तिका सत्य हे'' या श्रुतिसों कार्य जो हे सो कारणसों अलग नहीं हे ये बात जताई हे.

जगत् मिथ्या हे ये बात श्रुतिन्सों नहीं सिद्ध हो सके हे. एसो ही यदि श्रुतिको अभिप्राय होतो तो ''छीपमें जो चांदीको भ्रम होवे हे सो चांदी मिथ्या हे'' एसो ही दृष्टान्त देनो योग्य हतो. जगत् यदि मिथ्या होय तो सत्य ब्रह्मज्ञान्सों मिथ्या जगत्को ज्ञान केसे सम्भव होय सके हे तथाच एक ज्ञान् सों सर्व पदार्थको ज्ञान हो जायवेकी जो प्रतिज्ञा हे ताकी हानि होय हे, तासों जगत्कुं मिथ्या बनायवेके अर्थ ये श्रुति नहीं हे. सूत्रकार वेदव्यासजीनें भी ''तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः'' (ब्रह्म-सूत्र२।१।१४) या सूत्रमें जगत्को ब्रह्मके साथ अभेद ही सिद्ध कियो हे.

शङ्का:कदाचित् कहोगे के जेसे व्यासजी बडे हें वेसे शङ्कराचार्यजी भी तो बडे हें, उनके वाक्यन्कुं भी प्रमाण माननो चहिये आपके करे निर्णयमें तो शङ्कराचार्यके वचनन्को विरोध आवे हे.

समाधान:तहां आज्ञा करें हें व्यासजी हमारे गुरु हें अर्थात् वेदान्तविचार करिवेवारे हम सबनके निर्वाह करिवेवारे हें. तात्पर्य ये हे के व्यासजी सूत्रन्कुं बनायकें श्रुतिके सन्देहन्कों नहीं मेटते तो हम वेदान्तविचार कैसे करि सकते तासों व्यासजीके अभिप्रा-यसों विरुद्ध मतकुं हम नहीं मानें हें।।८३।।

ननु सर्वेषां विचारो महान्. तत्र सूत्रेषु उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्तायाअपि वक्तव्यत्वात् कथम् एकान्ततो निर्णयः? सृष्ट्यादिवाक्यानि अर्थवादस् पाणि अतः तेषां स्तावकत्वमेव मुख्यमिति सृष्ट्यादौ तात्पर्याभावात् ज्ञानस्यैव फलसाध-कत्वात् क्रियावद् ज्ञानस्य अर्थवादवाक्यप्रयोजनाभावाद् वस्तुस्वस् पज्ञाने कार्यापेक्षया विवर्तस्य प्रयोजकत्वात् मिथ्या-त्वमेव स्वीक्रियताम् इति आह ज्ञानार्थम् इति.

ज्ञानार्थम् अर्थवादश्चेच्छ्रुतिः सृष्ट्यादिस् पिणी।।
अनङ्गीकरणाद्युक्तं विधिमाहात्म्ययोर्न तत्।।८४।।

परिहरति अनङ्गीकरणाद् इति. भवेद् एतदेवं यदि मिथ्यावादिमते सृष्ट्यादिवाक्यैः सह महावाक्यस्य एकार्थता सम्भवति. पूर्वकाण्डे विद्ध्येकवाक्यता अर्थवादानां ''स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युः'' (मीमां.सूत्र१।२।७) इति उत्तरकाण्डे ब्रह्मवादिनां माहात्म्यज्ञानेन एकवाक्यता. अन्येषां मतेतु न वेदान्तेषु माहात्म्यज्ञानम् उपयुज्यते, नापि विधिः. अतएव एकवाक्यताभावात् न एवम् अर्थः स्वीकर्तव्यः।।८४।।

शङ्काःवेदार्थ जानिवेके अर्थ विचार ही बडो साधन हे. विचारके द्वारा व्याससूत्रको अर्थ अन्य आचार्यन्नें भी कह्यो हे तहां आपको ही कियो अर्थ व्यासजीके सम्मत हे अन्यको कियो अर्थ व्यासजीके अभिप्रायके विरुद्ध हे या बातको निर्णय केसे होय? तासों विचार करनों ही योग्य हे. तहां मोक्षको देवे वारो ज्ञान हे. सृष्टिके कहिवे वारे वेदके जितने वाक्य हें वे सब अर्थ-वादस्प हें, अर्थात् स्तुति करिवे वारे हें. तथा जगत्कों यदि ब्रह्मको कार्य मानोगे तो ब्रह्म विकार वारो माननो पडेगो, क्योके कारणमें कछु विकार भये विना वो कार्यस्प नहीं बन सके हे. तथा कार्यके द्वारा कारणको विलम्बसों ज्ञान होय हे, विर्वत (भ्रम)के द्वारा भ्रमके आधारको शीघ्र ज्ञान होवे हे तासों जगत्कुं मिथ्या भ्रमस्प ही माननो उचित हे.

उत्तरःतुमारे मतमें सृष्टिवर्णन करिवेवारे वाक्यन्की ''तत्वमसि'' आदि महावाक्यन्के साथ एकवाक्याता नहीं सम्भव हो सके हे क्योंके तुमारे मतमें तो ज्ञान ही मोक्षको साधन हे, अर्थात् मोक्षके देवेमें असहायशूर हे. तासों सृष्ट्यादि वाक्य व्यर्थ ही होंयगे, क्योंके ''तत्वमसि'' ये वाक्य विधिस्प नहीं हे तासों सृष्ट्यादि वाक्य कोनकी स्तुति करिवे वारे होंयगे? स्तुति करिवे वारे भये विना एकवाक्यता होनी दुर्घट हे. अतएव जगन्मिथ्यात्वस्प अर्थ भी नहीं मानवे योग्य हे.

हमारे ब्रह्मवादीन्के मतमें तो पूर्व काण्डमें यज्ञादिकन्में प्रवृत्ति करिवेके अर्थ विधिकों जेसे अर्थवादकी अपेक्षा रहे हे तेसें उत्तर काण्डके ज्ञानवाक्य भी जननादि माहात्म्यज्ञानके द्वारा ब्रह्मज्ञान सिद्ध होयवेके अर्थ सृष्टिवाक्यन्की अपेक्षा राखे हें, तासों एकवाक्यता बन सके हे. क्योंके जिन वाक्यन्को प्रयोजन एक होय तथा परस्पर आकांक्षावाले होंय उन वाक्यन्की एक-वाक्यता होवे ये एकवाक्यताको लक्षणहे।।८४।।

ननु अस्तु एकवाक्यतायां प्रकारः अध्यारोपापवादः. पूर्वश्रुत्या प्रथमं जगज्जननम् उक्त्वा कर्तृत्व-भोक्तृत्वे ब्रह्मणि प्रतिपाद्य तद्वारा सोपाधिके ब्रह्मणि बुद्धौ सिद्धायां, शाखारुन्धतीन्यायेन पूर्वोक्तम् अपोह्य कर्तृत्वाद्यपेतं पश्चाद् ब्रह्म बोध्यते इति आह अपवादार्थम् इति.

अपवादार्थमेवैतद् आरोपो वस्तुतो न हि।।
दृढप्रतीतिसिद्ध्यर्थम् इति चेत् तन्न युज्यते।।८५।।

एतस्य कर्तृत्वादेः आरोपः. तस्य प्रयोजनम् दृढप्रतीतिसिद्ध्यर्थम् इति. अतो न ब्रह्मणि वस्तुतः कर्तृत्वम्, इति चेत्, न एवं वक्तुं युक्तम्।।८५।।

शङ्काःजेसे कोई पुरुष अरुन्धतीके ताराकों नहीं जानतो होय वा पुरुषकुं अरुन्धतीको ज्ञान करायवेके अर्थ जा वृक्षकी शाखाके ऊपर अरुन्धतीको तारा होय वा शाखाकुं अरुन्धतीके नामसों बतावे हें. ता पीछे मुख्य अरुन्धतीको ज्ञान करवायके शाखामें अरुन्धतीके ज्ञान्कुं दूर करदे हें. एसें ही निराकार ब्रह्मज्ञान करायवेके अर्थ सृष्टिवाक्यन् करिके ब्रह्मकुं कर्ता-भोक्ता बतायकें मायिक सगुण ब्रह्मको ज्ञान करावे हें. ता पीछें वाक्यन् करिके कहे भये कर्ता भोक्तापनेको निषेध करिके शुद्ध ब्रह्मको ज्ञान वेद करावे हे. तासों ज्ञानवाक्यन्कुं कर्ता-भोक्तापनेको निषेध करिवेके अर्थ पहिले झूठो कर्ता-भोक्तापनो नहीं भये विना निषेध कायकी करी जाय? तासों वाक्यन्सों कर्ता-भोक्तापनेको प्रतिपादन करिवेवारे सृष्टिवाक्यन्की अपेक्षा हे. यासों एकवाक्यता बन सके हे.

उत्तरःजेसे वन्ध्याके पुत्रको निषेध करिवेके अर्थ कोई झूठो वन्ध्याको पुत्र बनावे तो वो पुत्र वाणीमात्रमें ही आ सके हे, इन्द्रियन्सों वाकी प्रतीति नहीं होवे हे. एक ही इश्वरमें कर्ता-भोक्तापनेको निषेध करिवेके अर्थ वेदमें सृष्ट्यादि वाक्यन् करिके मिथ्यासृ-ष्टिकी कल्पना करी होय तो ये जगत् वाणीमात्रमें आनो चहिये, प्रत्यक्ष प्रतीत नहीं होनो चहिये।।८५।।

तत्र हेतुः मुख्यार्थबाधनम् इति.

मुख्यार्थबाधनं नास्ति कार्यदर्शनतः श्रुतेः।।

ऐन्द्रजालिकपक्षेऽपि तत्कर्तृत्वं नटे यथा।।८६।।

अपवादार्थं जगत्कथने तस्य सती प्रतीतिः न स्यात्. न हि जगत्प्रतीतिः वेदसिद्धा येन प्रथमं बोधयति पश्चात् निषेधति; लोकसिद्धा हि एषा, तथा च तत्कर्तारमेव आह. जगदनूद्य तत्कतृत्वं बोधयित्वा यदि हि निषेधं कुर्यात् तदा कार्यस्य विद्यमानत्वात् कर्त्रन्तराभावाच्च बाधितविषया स्यात्. सर्वतो बलवती हि अन्यथानुपपत्तिः. वेदोऽपि स्वभ्रान्तिकल्पितः इति महत्साहसम्. किञ्च स कल्पको न अस्मदादिः, तथा सति पारम्पर्यं न उपपद्येत. ''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्'' (ब्रह्मसूत्र२।२।२९) इति न्यायविरोधश्च. अतः प्रपञ्चप्रतीतेः विद्यमानत्वात् मुख्यार्थबाधनं नास्ति.

अथ ग्रहिलतया मायासहितस्यैव कर्तृत्वम् अङ्गीक्रियते, प्रपञ्चस्य च मायिकत्वं, तदा लौकिकमायिनो दृष्टान्तीकर्तव्यः. तत्रच तादृशप्रदर्शनसामर्थ्यस्पमन्त्रादिना कर्तृत्वं नटे वर्ततएव इति आह ऐन्द्रजालिकपक्षेऽपि इति. दर्शनन्यायश्रुतिभिः न जगतो मिथ्यात्वम् इति भावः।।८६।।

शङ्का:जगत्की प्रतीति वेदसिद्ध नहीं हे तासों वेद पहिले कहिके फिर निषेध कर सके हे.

समाधान:जगत् तो प्रत्यक्ष दीख ही रह्यो हे, तासों वेद तो या जगत्के करिवे वारेकुं बतावे हे. कहोगे के वेद हे सो जगत्को करिवे वारो ईश्वर हे ये पहिली कहके पीछें कहे हे जगत्के करिवे वारो ईश्वर नहीं हे, ईश्वरतो अकर्ता हे, तब तो कार्यस्प जगत् तो विद्यमान ही हे, ईश्वर विना अन्य कोई कर्ता होय नहीं सके हे, फिर वेदको अकर्तापनेंको कथन असम्भव होयवेसों वञ्चक मनुष्यके वचनके समान भयो.

ओर वेद भी भ्रम करिकें कल्पित हे एसें कहोगे तो नास्तिकके समानता तथा दुराग्रहीपनो प्राप्त होयगो. वेद यदि अस्मदादिकनकी कल्पनासों बन्यो होय तो वेदके पढवे-पढायवेकी परम्परा अनादिसुं चली आवे हे वो नहीं बन सकेगी. तथापि यदि जगत्कुं मिथ्या मानोगे तो ''वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत्'' (ब्रह्मसूत्र२।२।२९) या व्याससूत्रसों विरोध आवेगो. क्योंके या सूत्रमें स्वप्नादिकन्के तुल्य जगत् नहीं हे ये बात स्पष्ट लिखी हे. तासों प्रत्यक्ष विद्यमान जगत्स्प कार्यको कर्तापणों जो वेदने ब्रह्ममें बतायो हे ताको निषेध नहीं करनो.

मायावादी यदि हठ करिकें मायासहित ब्रह्मकुं जगत्को कर्ता मानेंगे तथा जगत् माया करिके बन्यो भयो मानेंगे तब तो जेसे नट मन्त्र-तन्त्रादिकन् करिके मिथ्या वृक्षादिकन्कुं दिखावे हे तथा उनको कर्ता नट ही कहावे हे एसें ही मायिक जगत्को कर्ता ईश्वर ही भयो।।८६।।

मिथ्यात्वाङ्गीकारे बाधकम् आह मुक्तिस्तदा इति.

मुक्तिस्तदातिनष्टा स्यात् स्वप्नदृष्टगजेष्विव।।

कृत्स्नस्य प्रपञ्चस्य कल्पितत्वे तन्मध्यपातात् मनुष्यादीनां मुक्त्यर्थं प्रयत्नो व्यर्थः स्यात्. न हि मायायां प्रतीताः पारावताः कदाचिदपि मुच्यन्ते, नापि स्वप्नदृष्टः गजाः. अतो अखिलजगत्साक्षी भगवानेव मुच्येत नतु अस्मदादयः, तन्मायापरिकल्पितत्वात्. तथा सति व्यर्थः पारलौकिकप्रयासः. अस्मदज्ञानपरिकल्पितत्वन्तु मोहार्थमिति पक्षद्वयेऽपि मायावादो बाधितः. उपहितचैतन्यस्पभगवन्मायापक्षे अस्मदज्ञानपरिकल्पनापक्षे च.

स्वप्रवृत्तिविघातेन गुर्वादीनां च दूषणात्।

मायावादो न मन्तव्यः सर्वव्यामोहकारकः।।

ननु अस्तु मायैव कर्त्री, तदुपहितो जीवो वा ''ब्रह्म तूभयबिम्बस्पम्'' इति श्रुतौ तत्कर्तृत्वं बोध्यते इति आशङ्क्य आह मायादीनां च कर्तृत्वम् इति.

मायादीनाञ्च कर्तृत्वं श्रुतिसूत्रैर्विबाध्यते।।८७।।

''कथमसतः सज्जायेत'' (छान्दो.उप.६।२।२) ''स ईक्षां चक्रे'' (प्रश्नोपनि.६।३) ''ईक्षतेर्नाशब्दम्'' (ब्रह्मसूत्र१।१।४) ''कामाच्च नानुमानापेक्षा'' (ब्रह्मसूत्र१।१।१७) ''नेतरोऽनुपपत्तेः'' (ब्रह्मसूत्र१।१।१५) इत्यादिश्रुतिसूत्रैः मायायाः प्रकृतेः जीवस्य च कर्तृत्वं निषिध्यते।।८७।।

जगत्कुं मिथ्या मानिवे पर स्वप्नमें देखे गये हाथीकी मुक्तिके समान् संसारी जीवकी मुक्ति अति नष्ट हो जायगी.

या पक्षमें मुक्तिको अत्यन्त नाश प्राप्त होवे हे. क्योंके सब जगत् जब इन्द्रजालके समान कल्पित हे तब तो मनुष्य भी जगत्में आयगये इतनें वे भी मिथ्या-कल्पित ही भये. तब तो इनको मुक्तिके अर्थ प्रयत्नकरनो वेसे ही वृथा होयगो जेसे इन्द्र-जालके बने भये कबूतर आदि पदार्थन्को कभी मोक्ष नहीं होवे हे, जेसे स्वप्नके हाथीकी मुक्तिके अर्थ कोई भी पुरुष प्रयत्न नहीं करे हे. या पक्षमें जगत्के साक्षी भगवान् ही मुक्त माने जायेंगे. उनकी मायाके बने भये अस्मदादिक जीव सब बद्ध ही रहेंगे. तब तो परलोककी प्राप्ति हायवेके अर्थ जो शास्त्रमें साधन लिखे हें उनको परिश्रम व्यर्थ ही होयगो.

वाचस्पतिमिश्र कहे हें ''जगत् जीवके अज्ञानको बनो भयो हे'' ये उनको कहनो धोका देवेके अर्थ हे.

''सूर्याचन्द्रमसौ'' (ऋग्वेदः१०।१९०।१) या श्रुतिमें सूर्यादि सब पदार्थकों ब्रह्मके बनाये भये कहे हें. यासों भी विरोध आवे हे.

किञ्च इन दोउ पक्षन्में जीवकी मुक्तिमें प्रवृत्तिको विघात होवेगो तथा शिष्य-शास्त्र-गुरु ये सब मिथ्या ही होवेंगे. तासों सबन्कुं मोह करायवे वारो मायावाद नहीं माननो चहिये.

शङ्काःसांख्यकी रीतिसों माया जगत्की करिवेवारी हे एसो माननो; अथवा माया करिके (उपहित) चारों ओरसों ढक्यो भयो जीव ही जगत्को करिवेवारो हे ऐसो माननो. ईश्वर तो मायाको अथवा जीवको बिम्बस्प हे. मेघन्के चलवेमें जेसे चन्द्रमा चले हे एसो प्रतीत होवे हे एसें ही मायादिकन्के जगत् बनायवेमें ब्रह्म जगत् बनावे हे एसी प्रतीति होवे हे. तासों वेदमें ब्रह्मकुं जगत्को कर्ता कह्यो हे.

उत्तरः''कथमसतः सज्जायेत'' (छान्दो.उप.६।२।२) अर्थःअसत् अर्थात् झूठे पदार्थसुं सत्य पदार्थ केसें बन सके हे? ''यदिदं किञ्च तत्सत्यम्'' (तैत्ति.उप.२।६) इत्यादि श्रुतिन्सों सिद्ध होवे के ब्रह्म भी सत्य हे तथा जो कछु पदार्थ प्रत्यक्ष दीखें हे वे भी सब सत्य हें. या श्रुति करिके मायाके कर्तापणेको निषेध सिद्ध होवे हे. ''नेतरोनुपपत्तेः'' (ब्रह्मसूत्र१।१।१५). या सूत्रसों भी जीवके कर्तापणेको निषेध व्यासजीने कियो हे. जा समय सृष्टिकी आदिमें जीवन्के शरीर ही पैदा नहीं भये वा समयमें शरीर विना जीव जगत्कुं कैसे बनाय सके हे? एसें अनेक श्रुति-सूत्रन करिके जीव तथा माया कर्ता नहीं बन सकें हे ये सिद्ध होवे हे।।८७।।

ननु ब्रह्मणि कर्तृत्वनिषेधः श्रूयते अस्थूलादिवाक्यैः. तथा निरञ्जनश्रुतिः ''अकर्ता अभोक्ता च'' इति. ''अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते''(भग.गीता३।२७) इति एतद् अन्यथानुपपत्त्या, कर्तृत्वस्य भ्रान्तिसमानाधिकरणत्वं लोके दृष्टमिति दूषणभयाद् ब्रह्मणि कर्तृत्वं न अङ्गीक्रियते इति आशङ्क्य आह अकर्तृत्वञ्च इति.

अकर्तृत्वञ्च यत्तस्य माहात्म्यज्ञापनाय हि।।

ब्रह्मणि अलौकिकं कर्तृत्वं वदन् अकर्तृत्वम् आह लौकिककर्तृत्वनिषेधार्थम्. अन्यथा ''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा'' (भग.गीता७।६) इति स्वयं पश्चात् कर्तृत्वम् उच्यमानं विरुद्ध्येत. एतदेव अभिसन्धाय केनचिद् उक्तं ''न प्रमाणमनाप्तक्तिर्नादृष्टे क्वचिदाप्तता, अदृश्यदृष्टौ सर्वज्ञः'' (न्यायकुसुमाञ्जलिः३।१६) इति. अतो माहा-

त्म्यज्ञापनार्थमेव अकर्तृत्वकथनम्, यथा ''पुरुष एवदं सर्वम्'' (ऋग्वेद:१०।९०।२) ''उतामृतत्वस्येशानः'' (तत्रैव) ''एतावानस्य महिमा'' (तत्रैव१०।९०।३) इति 'हि' शब्दार्थः.

माहात्म्यबोधनप्रकारम् आह विरुद्धधर्मबोधाय इति.

विरुद्धधर्मबोधाय न युक्त्यैकस्य वारणम्।।८८।।

यत्र एवं परस्परविरुद्धा: धर्मा: बोध्यन्ते सएव महान्. ते धर्मा: उभये सत्याः, अन्यथा माहात्म्यं न सिद्ध्येत्, नटवत्. अतो युक्त्या अन्यतरस्य न बाधः।।८८।।

शङ्का:''अस्थूलमनण्वम्'' (बृहदा.उप.३।३।८) इत्यादि ''निरवद्यं निरञ्जनम्'' (मुण्ड.उप.३।१।३) इत्यादिवाक्यन् सों ब्रह्मके कर्तापणेंको भी तो निषेध सिद्ध होवे हे. गीतामें ''अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते'' (भग.गीता३।२७) या वाक्यसों भी ये ही निश्चय होय हे. लोकमें जो कर्ता दीखे हे वो अहङ्कार-मोह-भ्रमवारो दीखे हे. ब्रह्मकुं भी कर्ता मानोगे तो ब्रह्ममें भी ये दोष आवेंगे तासों ब्रह्मकुं कर्ता नहीं माननों चहिये.

उत्तर:श्रुति हे सो ब्रह्ममें अलौकिक कर्तापणेको स्थापन करती भई अहङ्कारादि दोष सहित लौकिक कर्तापणेको निषेध करि-वेके अर्थ ब्रह्मकुं अकर्ता कहे हे. सर्वथा कर्तापणेके निषेधमें ही यदि श्रुतिको तात्पर्य होय तो गीतामें ''अहं सर्वस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा'' (भग.गीता७।६) या श्लोकमें ब्रह्ममें जगत्को कर्तापणो वर्णन कियो हे तासों विरोध आवेगो. तासों ब्रह्मकी महिमा जतायवेके अर्थ ब्रह्मकुं अकर्ता बतायो हे. जेसे पुरुषसूक्तमें ''पुरुषएवेदं सर्वम्'' (ऋग्वेद:१०।९०।२) ''उतामृतत्वस्ये-शानः'' (तत्रैव) ''एवतावानस्य महिमा'' (तत्रैव१०।९०।३) अर्थ:ब्रह्म सर्वस्प हे. अमृतको भी ईशान हे. या मन्त्रमें ब्रह्मकुं सब जगत्को स्वामी बतायकें जगत्कुं भी ब्रह्मस्प ही बतायो हे. आगे लिख्यो हे के ''ब्रह्मकी महिमा हे जो अपने स्वस्पको ही आप स्वामी हो जावे हे''. यद्यपि लोकमें अपने शरीरको आप मालिक होय वा पुरुषकी महिमा नहीं होय हे अन्यन्को मालिक होय ताहीकी महिमा होवे हे तथापि ब्रह्ममें लोकविरुद्ध धर्म ही महिमा जतायवे वारो हे.

परस्पर विरुद्धधर्म जा पदार्थमें वेदनें जताये होंय वो पदार्थ ही बडो समुझनो तथा दोनों प्रकारके धर्मन्कुं भी सत्य ही समुझनो. जेसे ''समो मशकेन समो नागेन'' या वाक्यमें ब्रह्मकुं हाथीके तथा मच्छरके समान लिख्यो हे. तहां लोकमें मच्छरके समान पदार्थ हाथीके समान नहीं होय सके हे एसे तर्क करिके हाथीके समान ब्रह्मकुं बतायवे वारे वाक्यकुं मिथ्या नहीं माननो. एकवाक्यकुं यदि मिथ्या मानलियो जाय तो ब्रह्मको माहात्म्य नहीं सिद्ध होय. नट जेसे मन्त्र-औषधादिक करिके नाहर तथा हाथी बन जावे हे तेसे ब्रह्म स्वभाव करिकें ही छोटो-बडो, चल-अचल, कर्ता-अकर्ता आदिस्प हो जाय हे।।८८।।

पुराणन्तु मित्रसम्मतमिति लोकरीत्या बोधयन् कदाचिन् मायिकत्वं बोधयति इति आह मायिकत्वं पुराणेषु इति.

मायिकत्वं पुराणेषु वैराग्यार्थम् उदीर्यते।।
तस्माद् अविद्यामात्रत्वकथनं मोहनाय हि।।८९।।
आसक्तिनिवृत्त्यर्थं तथा बोध्यते, अवान्तरप्रकरणानुरोधात् च तथा अवसीयते. उपसंहरति तस्माद् इति।।८९।।

पुराणन्में प्रपञ्चके मायिकत्वके प्रतिपादक जो वाक्य उपलब्ध होंय हें वाको प्रयोजन जनावे हें के पुराण मित्र समान उपदेश करिवेवारो हे, अत: लौकिक रीतिसुं समुझाते भये पुराणन्में कहुं-कहुं जगत्कुं जो मिथ्या बतायो हे सो आसक्ति दूर करिवेके अर्थ बतायोहे. जेसें कोई पुरुषनें अपने मित्रसों कही ''हे मित्र विष खानो उचित हे परन्तु शत्रुके घर भोजन करनों योग्य नहीं'' या वाक्यको शत्रुके घर भोजन नहीं करायवेमें तात्पर्य हे, विष खवायवेमें तात्पर्य नहीं हे, एसें ही विषयतास्प अन्तरा सृष्टिकुं मिथ्यात्व कहिकें आसक्ति दूर करायकें वैराग्य सिद्ध करिवेमें पुराणन्को तात्पर्य हे, सत्यब्रह्मात्मक जगत्कुं मिथ्या बता-यवेमें पुराणन्को तात्पर्य सर्वथा नहि हे. जगत्कुं मिथ्या कहिवेमें ही यदि पुराणन्को तात्पर्य होय तो भागवतमें ''विश्वं वै ब्रह्म

तन्मात्रम्'' तथा विष्णुपराणमें ''तदेतदक्षयं नित्यं जगन्मुनिवराखिलम्'' इत्यादि अनेक स्थलन्में जगत्कुं सत्यस्पता तथा ब्रह्मात्मकता नहीं लिखते. तासों अवतार प्रकरणके अनुसार वेसे वचनन्कों वेराग्य बोधनार्थ समुझ लेनों. याको विस्तार 'आवरणभङ्ग'में या श्लोकव्याख्यानमें बहुत कियोहे।।८९।।

अस्मिन् अर्थे भगवद्वाक्यं सम्मतिस्पम् आह असत्यमप्रतिष्ठं तेइति.

असत्यमप्रतिष्ठं ते जगदाहुरनीश्वरम्।।
अपरस्परसम्भूतं किमन्यत् कामहेतुकम्।।९०।।
अतो यत्र क्वचित् जगतो मिथ्यात्वम् असत्यत्वं मायिकत्वम् इति बोध्यते तद् आसुरम् इति निश्चयः।।९०।।

तासों प्रकरणके अनुसन्धान राखे विना जगत्कुं अविद्यास्प कहेनो प्रतारणा करनो हे. श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें के हमारे सिद्धान्तमें भगवान्के वाक्यकी सम्मति हे. गीतामें ''असत्यमप्रतिष्ठम्'' (भग.गीता१६।८) या श्लोकमें जगत्कुं मिथ्या-मायिक-असत्य बतायवे वारेन्कुं आसुर कहे हें.

श्लोकार्थ:वे आसुर लोग जगत्कुं असत्य, अप्रतिष्ठित तथा अनीश्वर अर्थात् ईश्वररहित बतावे हें. वे जगत्कुं स्त्री-पुरुषके संसर्गसों उत्पन्न भयो माने हें. तथा उनके मतमें जगत्की उत्पत्तिको हेतु काम ही हे ईश्वर नहीं ।।९०।।

ननु ब्रह्मवादेऽपि 'वाचारम्भण'वाक्यानुरोधाद् विकल्पानाम् असत्यत्वम् अङ्गीकर्तव्यम् इति आशङ्क्य आह अखण्डाद्वैतभाने तु इति.

अखण्डाद्वैतभाने तु सर्वं ब्रह्मैव नान्यथा।।
ज्ञानाद् विकल्पबुद्धिस्तु बाध्यते न स्वस्पतः।।९१।।

द्वेधा हि वेदान्तानां बोधन प्रकारः. ''प्रजायेय'' (तैत्ति.उप.२।६) इतिवाक्यानुरोधाद् उच्च-नीचत्वं भगवानेव प्राप्तः इति विकल्पबुद्धावपि ब्रह्मावगतिः न विरुद्ध्यते. क्वचित्पुनः विकाराः वाचैव आरब्धाइति कार्यांशम् अनादृत्य वस्तुस्वस्पविचारेण आविर्भावतिरोभावौ पृथक्कृत्य ''सन्मात्रं जगद्'' इति बोधयन्ति. तत्र प्रथमपक्षे सन्देहएव नास्ति, द्वितीयपक्षेऽपि न दूषणमिति 'तु'शब्दः. यदा अखण्डाद्वैतभानं सुवर्णग्राहकवत् सत्वेनैव सर्वं गृह्णाति तदा अवान्तरविकल्पविषयिणी बुद्धिः 'घटः'-'पटः' इति सा बाध्यते. सर्वत्र ब्रह्मैव इति बुद्धिः भवति. ननु स्वस्पतोऽपि घटादिपदार्थोऽपि धर्मी बाध्यते इति अर्थः।।९१।।

शङ्का:'वाचारम्भण' श्रुति करिके जगत्में ब्रह्मबुद्धिकुं सत्यता आवे हे तथापि घट-पटादिक विकल्पकुं तो मिथ्यापणो प्राप्त होवे ही हे.

उत्तर:वेदान्तमें ज्ञान करायवेके दो प्रकार लिखे हें मुख्याधिकारीन्के अर्थ सखण्डाद्वैत को प्रथम पक्ष हे. तामें ब्रह्मासों लेकें घास पर्यन्त जितनें हु पदार्थ हें उनमें उच्च-नीचत्वकों भगवान् ही प्राप्त हो रहे हें. अर्थात् भगवान् ही घट-पटादि पदार्थस्प हें. या रीतिकी विकल्पबुद्धि भी ब्रह्मज्ञान् सों विरुद्ध नहीं हे. तथा अन्य अधिकारीन्के अर्थ दूसरो पक्ष हे. तामें ''ये घट हे''-''ये पट हे'' एसी विकल्प बुद्धिको अनादर करिकें सब ब्रह्म हे एसी बुद्धि राखनी चहिये. जेसें सुवर्णको लेवेवारो ''ये कुण्डल हे''-''ये कडा हे'' एसी बुद्धिकों छोडिके सबन्कुं सुवर्ण मानके ही ले जावे हे एसें ही अखण्डाद्वैतको ज्ञान सुवर्णग्राहकके समान हे. जब सब पदार्थन्कुं सद्रूप ही माने हे तब ''ये घट हे''-''ये पट हे'' एसी बुद्धिको बाध हो जावे हे. सब ठिकाने ब्रह्म हे एसी बुद्धि हो जावे हे. या पक्षमें भी सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि हो जावे हे तब ''ये घट''-''ये पट'' एसी बुद्धि ही मिट जावे हे तथापि घट-पटादि पदार्थ नहीं मिटे हें. तासों या रीतसों भी जगत् मिथ्या नहीं हो सके हे.

श्लोकार्थ:अखण्डाद्वैतकी अनुभूति होयवे पर तो सम्पूर्ण भेद सहित प्रपञ्च ब्रह्मके स्पमें ही प्रतीत होवे हे. अर्थात् ब्रह्मत्वेन ही गृहीत होवे हे, अन्यथा नहीं, अर्थात् वा स्थितिमें भेदको ज्ञान नहीं होय हे. ब्रह्मज्ञान होयवे पर विकल्पबुद्धि अर्थात् भेदबुद्धिको बाध होय हे किन्तु प्रपञ्च स्वस्पत: बाधित नहीं होय हे अर्थात् प्रपञ्चके घट–पटादि स्वस्पको बाध नहीं होय हे।।९१।।

ननु घट–पटयो: द्वैतं न उपपद्यतइति प्रत्यक्षानुरोधाद् द्वैतम् अङ्गीकर्तव्यम् इति आशङ्क्य आह भिन्नत्वम् इति.

भिन्नत्वं नैव युज्येत ब्रह्मोपादानत: क्वचित्।।
वाचारम्भणमात्रत्वाद् भेद: केनोपजायते।।९२।।

कटक–कुण्डलयो: भेदो न सर्वथा भवति, उपादानस्य एकत्वात्. धर्मस्पत्वे एकस्यैव उभयं धर्म:. तयोश्च उपादानाभेदाद् भेदो न युक्तिसह:. प्रत्यक्षन्तु अभेदेपि भेदं गृह्णाति, द्विचन्द्रादिवत्. महतान्तु प्रत्यक्षं तदपि न गृह्णाति. अत: प्रमाणानुरोधाद् वाचारम्भणमात्रत्वं पदार्थानाम् अवगत्य सर्वत्र ब्रह्माभावावगतौ केन भेद: उपजायते इति अर्थ:. तस्माद् भेदानुरोधेनापि ब्रह्मवादो न निराकर्तव्य: इति भाव:।।९२।।

कितनेक मतवारे घडा वस्त्र आदि पदार्थन्कुं न्यारे–न्यारे देखिकें प्रत्यक्षके अनुसार घट–पटादि पदार्थन्को भेद माने हें सो भी ठीक नहीं हे. जेसें सुवर्णके बने भये कडा, कुण्डल आदि पदार्थन्में भेद नहीं होवे हे, क्योंके दोनोंको (कारण) अर्थात् बनायवेवारो एक ही पदार्थ हे एसें ही जगत्के पदार्थन्में भी भेद नहीं हे, क्योंके सब पदार्थन्को बनायवेवारो उपादानकारण ब्रह्म एक ही हे.

घट–पटादि पदार्थन्कुं धर्मस्प माने जांय तो भी एक ब्रह्मके ही दोनों धर्म भये. या पक्षमें भी उपादान–ब्रह्मके साथ अभेद हे. तासों भेद माननों युक्ति विरुद्ध हे. प्रत्यक्ष देखिवेसों तो भेद अभेदको निश्चय नहीं होय सके हे. कभी एक चन्द्रमाके भी दो चन्द्रमा दीख आवे हें. घटाकाश–महाकाशको भेद नहीं हे.

लोकमें देहसों न्यारो आत्मा भी नहीं दीखे हे तासों महात्मानको ही प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण हे. उनकुं तो सर्वत्र अभेद ही प्रतीत होवे हे तासों 'प्रजायेय' तथा 'वाचारम्भण' वाक्यके अनुसार सब ठिकानें ब्रह्मबुद्धि भये पीछे भेद करिवे वारो कोई भी पदार्थ बाकी नहीं रहे जो भेद करि सके. तासों भ्रमयुक्त लौकिक भेदप्रतीति केवलसों ब्रह्मवादको खण्डन नहीं करनो।।९२।।

एवं मायावादं निराकृत्य साङ्ख्यनिराकारणार्थम् आह साङ्ख्यो बहुविध: इति.

साङ्ख्यो बहुविध: प्रोक्त: तत्रैक: सत्प्रमाणक:।।
अष्टाविंशतितत्वानां स्वस्पं यत्र वै हरि:।।९३।।

ब्रह्मवादएव प्रथमसृष्टानां पदार्थानां साङ्ख्य–योगात् साङ्ख्यम् इति यन् मतं तद् ब्रह्मवादएव प्रविशति. स्वतन्त्रतया यानि मतानि तानि अप्रामाणिकानि तत्र एकं स्थापयति तत्रैक: इति. सतां प्रमाणसिद्ध:. तस्य स्वस्पम् आह अष्टाविं–शति इति।।९३।।

या प्रकार मायावादको निराकरण करिके अब सांख्यमतके निराकरणार्थ आगेकी कारिका कहि रहे हें.

सृष्टिके प्रारम्भमें उत्पन्न भये पदार्थन्की प्रामाणिक गणना तथा उनको सम्यक् विवेचन ब्रह्मवादमें ही भयो हे अत: 'साङ्ख्य'नामसुं प्रसिद्ध सिद्धान्तको ब्रह्मवादमें ही समावेश हे. श्रुतिसिद्धान्तसों स्वतन्त्र रीतिसों बनाये भये जे साङ्ख्यमत हें वे प्रमाण नहीं माने जावे हें. अर्थात् भागवतके द्वितीय–तृतीय तथा एकादश स्कन्धमें लिख्यो जो साङ्ख्य सिद्धान्त हे वाकु प्रमाण माननो. वो ही मनुआदि महर्षिगणनें प्रमाण मान्यो हे।।९३।।

अन्येषां दूषणप्रकारम् आह अन्ये इति.

अन्ये सूत्रे निषिध्यन्ते योगोऽप्येकः सदादृतः।।
यस्मिन् ध्यानं भगवतो निर्बीजेऽप्यात्मबोधकः।।९४।।

अन्येषां च अनुपलब्धेः. न हि महत्तत्वं प्रकृतिर्वा जगति प्रतीयते. नित्या वा प्रकृतिः निरवयवा च कथं परिणमति. अतः स्वभाववादएव प्रकृतिवादोऽपि प्रविशति इति. अन्यत् दूषणं भाष्ये विस्तरेण उक्तम्.

योगं निराकरोति योगोऽप्येकः इति. चित्तवृत्तिनिरोधो योगः, स च भगवद्ध्यानार्थम् अङ्गत्वेन उपयुज्यते, स प्रामाणिकः. यस्तु स्वतन्त्रतया फलसाधकत्वेन प्रोक्तः, तथा सिद्धिहेतुः ज्ञानात्मा च, तथा अन्ये देहेन्द्रियादिसाधकाः ते अप्रमाणिकाः. सूत्रे च निषिद्ध्यन्ते ''एतेन योगः प्रत्युक्तः'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३) इति. तदाह यस्मिन् ध्यानं भगवतः इति. ''अन्ये सूत्रे निषिध्यन्ते'' इति अनुषङ्गः. ध्यानाभावेऽपि आत्मबोधाङ्गभूतः प्रामाणिकएव।।९४।।

निरीश्वर कापिल सांख्य आदि मतन्में प्रकृति, महत् आदि तत्व जा स्पमें स्वीकृत भये हें वा स्पमें उनकी उपलब्धि लोक-वेदमें नहीं होय हे अतः वो सांख्यमत सिद्धान्तमें स्वीकार्य नहीं हे. प्रकृति नित्य तथा निरवयव हे अतः वाको परिणमन हो ही नहीं सके हे. या प्रकारसों प्रकृतिपरिणामवाद मानिवे वारे सांख्यमतको पर्यवसान अथवा अन्तर्भाव अन्ततः स्वभाववादमें ही होवे हे. सांख्यमें रहे भये अन्य दूषण भाष्यमें ही विस्तार पूर्वक लिखे हें.

एसें ही योगशास्त्र भी वोही प्रमाण हे जो पुराणोक्त हे. योग चित्तकी वृत्ति रोकवेको नाम हे. भगवान्को ध्यान चित्त रुके विना नहीं हो सके हे तासों एसो योग भगवद्ध्यानको साधक हे तासों भक्तिको अङ्ग हे. जो योग भक्ति विना हि स्वतन्त्र होयकें फल देवेवारो हे वो प्रमाण नहीं हे, वाकुं लौकिक सिद्धि देयकें वृथा काल खोयवे वारो समुझनो. वा योगकुं पुराणादि-कन्में भी तुच्छमान्यो हे. ज्ञानात्मादिक योग कापालिकमतमें तथा वाममार्गमें लिखे हें वे भी प्रामाणिक नहि हें. एसे ही देहेन्द्रि-यादिकन्कुं दृढ करिवेवारे जो जोग हें उनकुं वृथा काल खायवेवारे जानिके अप्रामाणिक मानने. उन ही योगन्को ''अनेन योगः प्रत्युक्तः'' (ब्रह्मसूत्र२।१।३) या व्याससूत्रमें खण्डन कियो हे.

योग वो ही प्रमाण हे जामें भगवान्को ध्यान लिख्यो होय. जा योगमें ध्यान नहीं लिख्यो होय वाकुं केवल आत्मज्ञा-नको अङ्ग समुझनो, वाकुं वा ही विषयमें प्रमाण समुझनो।।९४।।

उपसंहार

एवं परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतं स्थापयित्वा निस्पितस्य भक्त्युपयोगम् आह वैराग्य इति.

वैराग्यज्ञानयोगश्च प्रेम्णा च तपसा तथा।।
एकेनापि दृढेनेशं भजन् सिद्धिमवाप्नुयात्।।९५।।

पञ्चाङ्गयुक्तः पुरुषो भगवन्तं भजेत्. तत्र प्रथमं वैराग्यम् अङ्गम्, तदभावे भगवदावेशाभावात् न भजनसिद्धिः. द्वितीयं ज्ञानं सर्वपदार्थनां याथार्थ्यस्पं भगवतश्च, तदभावे निश्चयाभावात् न प्रवृत्तिः. योगोऽपि अङ्गम्, मनसः चाञ्चल्ये भजनानुपपत्तेः. तथा प्रेमापि अङ्गं, तदभावे भजनं स्वतःपुरुषार्थस्पं न भवेत्. रसाभिव्यक्त्यभावात्. तपोऽपि अङ्गं, तदभावे देहादेः आत्मत्वात् न भजनं सिद्ध्यति, तपसा च देहेन्द्रियादीनां पाकः.

पञ्चानां समुदायो दुर्लभइति गौणपक्षम् आह एकेनापि इति. 'दृढेन' इति विशेषः. ईशं समर्थं कृष्णम्. सिद्धिं मोक्षम्।।९५।।

इतने ग्रन्थ करिके परमतको निराकरण कियो तथा स्वमतको वेदादिके अनुसार स्थापन कियो. अब या मतको भक्ति-मार्गमें उपयोग दिखावेहें.

पांच साधन सहित पुरुषकों भगवान्को भजन करनो चहिये. प्रथम तो १वैराग्य अर्थात् विषयभोगकी तृष्णाकुं छोडनो चहिये, क्योंके जहां तांई विषयभोगकी इच्छा नहिं मिटे हे तहां तांई भगवान्को आवेश नहिं आवे हे, ओर भगवान्को आवेश आये विना भगवद्भजन नहिं सिद्ध होय हे. दूसरो साधन २ज्ञान, अर्थात् जा पदार्थको जेसो स्वस्प हे वेसो ही स्वस्प वा पदार्थको जान लेनो, तथा भगवान्को भी शास्त्ररीतिसों यथार्थ स्वस्प जान लेनो, याको नाम 'ज्ञान' हे. या विना भगवद्भजन्में प्रवृत्ति हु नहिं होय. तीसरो साधन ३योग हे, अर्थात् चित्तके रोकिवेको नाम 'योग' हे. चित्तके रुके विना भगवद्भजन बन नहिं सके हे. चतुर्थ साधन ४प्रेम हे. प्रेम विना भगवद्भजन्में रस नहिं प्रकट होवे हे, रस आये विना भगवद्भजन्कुं मुख्य फलस्प नहिं माने हे. तहां तांई अन्य फलकी कामना करिके करी गई भक्ति स्वतः पुरुषार्थस्प स्वतन्त्र नहीं कहावे हे. भगवद्भजनको ५.तप पांचवो साधन हे. तप विना देहेन्द्रियादिक कच्चे रहे हें. तप करकें ही देह-इन्द्रिय आदि पक जावे हें. जब देहेन्द्रियादिक पक्के होंय तब हि भगवद्भक्ति बन सके हे.

परन्तु इन पांच साधनन्को सिद्ध होनो बहुत दुर्लभ हे. तासों मुख्य रीतिसों भजन नहिं बन सके तो गौण रीतिसों ही करनो. इन कहे पांच साधनन्मेंसों एक साधनकुं भी दृढ करिके वासों सर्वसमर्थ श्रीकृष्णको भजन कियो जाय तो मोक्ष होवे हे।।९५।।

एवम् उत्पत्तिप्रकारेण परमतनिराकरणपूर्वकं स्वमतं स्थापयित्वा काल-द्रव्य-गुणैः त्रेधैव प्रलयः इति प्रलय-प्रकारेणापि परमतं निराकर्तुम् आह ज्ञाने लयप्रकारा हि इति.

ज्ञाने लयप्रकारा हि जगतो बहुधोदिताः।।
मनसः शुद्धिसिद्ध्यर्थम् एकः साङ्ख्यानुलोमतः।।९६।।

ज्ञानमार्गे जगतो लयप्रकारा बहवः उक्ताइति ते सर्वे प्रकरणाभावात् मनसः शुद्ध्यर्थं ज्ञेयाः, यतः त्रिविधएव सङ्क्रमः, कालेन नित्यः. द्रव्येण सङ्कर्षणमुखाग्निना नैमित्तिकः, गुणैः प्राकृतिकः. तएव प्रकारान्तरम् आपन्नाः भाव-नया साधिता आत्यन्तिकशब्दवाच्या भवन्ति. नतु आत्यन्तिको अतिरिक्तः, अहन्ता-ममतानाशएव विषयाणां नाशोप-चारात्. ततो अतिरिक्तकल्पनायां प्रमाणाभावः. भावनया फलं भवतीति तदाह मनसः शुद्धिसिद्ध्यर्थम् इति. ''एकः साङ्ख्यानुलोमतः'' इति, ''अन्ने प्रलीयते मर्त्यः'' (भाग.पुरा.११।२४।२२) इत्यादिना निस्पितः।।९६।।

कितनेक मनुष्य ''ज्ञानसों जगत्को लय होवे हे'' या रीतिके अनेक वाक्य सुनिकें जगत्कुं अज्ञानस्प मान लेवे हें या सन्देहकुं दूर करिवेके अर्थ लयको स्वस्प दिखावे हें.

चित्त शुद्ध होयवेके अर्थ शास्त्रमें जगत्के लय होयवेके अनेक प्रकार कहे हें. मुख्य तीन प्रकार हें. एक नित्यप्रलय हे. काल करिके नित्य-नित्य सर्व पदार्थन्को लय होवे हे, जेसें दियाकी ज्योतिको उपरसों लय होतो जावे हे ओर भीतरसों दूसरी निकसती जावे हे. देखिवे वारेकुं एक ही ज्योति प्रतीत होवे हे. एसें ही सब पदार्थको नित्य प्रलय होवे हे, अस्मदादिकन्कुं प्रतीत नहिं होवे हे. दूसरो नैमित्तिक प्रलय हे. ये प्रलय द्रव्य करके होवे हे. जेसें दण्डके प्रहारसों घडाको लय हो जावे हे. तीसरो प्राकृतिक प्रलय हे. ये प्रलय गुणन् करिके होवे हे. ब्रह्माकी आयुष्य पूरी भयेसों सब सृष्टिको लय होवे हे. ता समयमें क्षोभित गुणन्को भी नाश हो जावे हे. इन प्रलयन्कुं भावना करिके सिद्ध कर लेनो येही आत्यन्तिक प्रलय हे. यद्यपि भावना करिके करे भये प्रलयमें जगत्के पदार्थन्को नाश नहिं होवे हे परन्तु भावना करिके उन पदार्थन्को प्रलय भयो समुझवेसों अहन्ता-ममताको नाश हो जावे हे वाहीसों विषयन्को नाश अथवा आत्यन्तिक प्रलय कहे हें. इन तीन प्रकार विना केवल ज्ञान करिके जगत्को नाश माननों प्रमाण विरुद्ध हे. वेसी कल्पनासों कछु फल भी नहिं होवे हे.

साङ्खचशास्त्रोक्त लयकी भावना करिवेको प्रकार एकादाश स्कन्धके चतुर्विंशाध्यायमें लिख्यो हे:अन्नमें शरीरके लयकी भावना, अन्नको धानामें लय, धानाको भूमिमें, भूमिको गन्धमें, गन्धको जलमें, जलको रसमें, रसको ज्योतिमें, ज्योतिको स्पमें, स्पको वायुमें, वायुको स्पर्शमें, स्पर्शको आकाशमें–या प्रकार परमेश्वरमें सब पदार्थन्के प्रलयकी भावना लिखी हे. आगेके श्लोकमें ''एवमन्वीक्षमाणस्य कथं वैकल्पिको भ्रमः, मनसो हृदि तिष्ठेत'' (भाग.पुरा.११।२४।२८) अर्थ:एसी भावना करिवे वारेके हृदयमें आत्माध्यासस्प अहङ्कारात्मक भ्रम नहिं रहे हे ये ही फल लिख्यो हे. देहनाश अथवा जगत्को नाश होनो फल नहिं लिख्यो हे. एसो ही होय तो भावना करिवे वारेको वाही समय देहनाश हो जानो चहिये. प्राकृतिक प्रल-यकी भावनाको नाम प्राकृतिक आत्यन्तिक लय हे. नित्य प्रलयकी भावनाको नाम नित्य-आत्यन्तिक लय हे. नैमित्तिक प्रल-यकी भावनाको नाम नैमित्तिक-आत्यन्ति लय हे।।९६।।

प्रकारान्तरम् आह इन्द्रियाणाम् इति.

इन्द्रियाणां देवतात्वं भावनाप्रापणे तथा।।
गोविन्दासन्यसेवातः प्रापणं नान्यथा भवेत्।।९७।।

''वाचमग्नौ सवक्तव्यम्'' (भाग.पुरा.७।१२।२६) इत्यादिना प्रापणेन तदंशमात्रलयो भिन्नो भवतीति तत्प्र-कारम् आह गोविन्दासन्यसेवातः इति. अयं लयो स्पान्तरापादकः कार्यस्पः उत्पत्तिरेव न लयः इति भावः।।९७।।

लयभावनाके एक अन्य प्रकारको निस्पण करे हें.

श्लोकार्थ:या ही प्रकार देवत्वभावनासों देवभावको प्राप्त होयवे पर इन्द्रियन्को लय होवे हे. गोविन्दकी सेवा अथवा आसन्य-प्राणकी उपासनासों इन्द्रियन्कुं देवतात्व प्राप्त होवे हे. इन्द्रियन्कुं देवतात्वकी प्राप्ति अन्य कोई प्रकारसुं नहीं हो सके हे.

लयभावनाको एक प्रकार सप्तम स्कन्धमें लिख्यो हे. तहां वाक्यन् सहित वाणीको अग्निमें न्यास करनो, शिल्प सहित हस्तको इन्द्रमें न्यास करनो कह्यो हे. या रीतिसों इन्द्रियन्को तत्वन्को लय दिखायो हे सो भी यतिधर्ममें वैराग्य होयवेके अर्थ दिखायो हे, कछु वो सृष्टिप्रकरण नहिं हे. पहिलो या ग्रन्थमें देह-सङ्घातके लयको प्रकार दिखायो हे, वो भी लय मनकी भावनामात्रसों नहिं होय हे किन्तु आसन्यकी अथवा गोविन्दकी सेवा करिके इन्द्रियन्में देवभाव होवे तब देवांशको लय होय, तब देहको लय होवे हे. ये लय स्पान्तर, अर्थात् दूसरेस्पकुं सिद्ध कर देवे वारो हे।।९७।।

प्रकारान्तरम् आह अद्वय इति.

अद्वयात्मदृढज्ञानाद् वैराग्यं गृहमोचकम्।।
वागादिविलयाः सर्वे तदर्थं मन आदिषु।।९८।।

''वाचं जुहाव मनसि'' (भाग.पुरा.१।१५।४१) इत्यादिना सङ्घातस्य लयभावनया अद्वयात्मदृढज्ञानं भवति, तस्य वैराग्यहेतुत्वम्. रागाभावस्य च सन्न्यासोपयोगः. अतएव न कारणे लयः उक्तः।।९८।।

श्लोकार्थ:अद्वयात्माके दृढ ज्ञानसों गृहमोचक अर्थात् गृहत्याग करायवे वारो वैराग्य होवे हे. मन आदिमें वागादि इन्द्रियन्के विलयकी भावना करिवेको प्रतिपादन वाही वैराग्यके अर्थ कियो हे.

जेसें कीडा भृङ्गीकी भावना करते-करते भृङ्गी होवे हे या न्यायसों भावनासों पहिले स्पको तो त्याग नहिं होय अपितु वाही पदार्थको अन्य स्प होय जाय–ये उत्पत्तिको ही प्रकार हे, ये लय नहिं हे. एसें ही राजा युधिष्ठिरने भी सङ्घातके लयकी भावना करी हे तहां वाणी, मन, प्राण आदि नव अग्निमें नव आहुतिन् करिके कल्पना मात्रसों होम कियो. या होममें अपने नियामकन्में होमकी भावना करी जावे हे, जेसें वाणीको होम मनमें कियो जावे हे, क्योंके वाणी मनके आधीन हे. मनको होम प्राणमें कियो जावे हे, क्योंके ''प्राणबन्धनं हि सोम्य मनः'' (छान्दो.उप.६।८।२) या श्रुतिमें मनकुं प्राणके आधीन लिख्यो हे. इत्यादि प्रकारको भी अद्वयज्ञान दृढ होवे हे, वासों वैराग्यको सन्यासमें उपयोग हे. राजाने सन्न्यासकी सिद्धिके अर्थ ही एसी भावना करी हती यासों ये निश्चय भयो।।९८।।

एवं लयत्रयम् उक्त्वा प्रकृतोपयोगम् आह भावनामात्रतः इति.

भावनामात्रतो भाव्या न हि सर्वात्मना लयः।।
मनोमात्रत्वकथनं तदर्थं जगतः क्वचित्।।९९।।

सर्वात्मना कालादिनेव न लयः. ''देहं मनोमात्रमिमं गृहीत्वा'' (भाग.पुरा.११।२३।५०) इत्यादिवाक्यानां बाधकत्वम् आशङ्क्य तेषामपि वैराग्योपयोगित्वम् इति आह मनोमात्रत्वकथनम् इति।।९९।।

उपर्युक्त तीनों लय भावनामात्रसों वैराग्यकी सिद्धिके अर्थ करने योग्य हें. काल आदि द्वारा प्रपञ्चको जा प्रकार लय होवे हे वा प्रकारको प्रपञ्चको लय इनकुं नहीं समुझनो. कहुं-कहुं वैराग्य, मनःशुद्धि आदिके सिद्ध्यर्थ जगत् वा देहादि के मनोमात्रत्वको प्रतिपादन भयो हे.

जितने लयके प्रकार हें भावनामात्र करिके भाव्य हें. देहादिकन्को लय करिव वारे नहिं हे. एसें ही जहां देहादिकन्कुं मनोमात्रता लिखी हे वो भी वैराग्य होयवेके अर्थ ही लिखी हे. वेसें भिक्षुगीतामें वैराग्य प्रकरणमें ''देहं मनोमात्र मिमम्'' (भाग.पुरा.११।२३।५०) या श्लोकमें लिखी हे।।९९।।

एवं मतान्तराणि निराकृत्य तेषां फलाभावं वक्तुं येनकेनापि मार्गेण भगवद्भजनं चेत् फलाय भवेत् तदा न एकान्ततः स्वमतं साधकं भवति इति मार्गन्तरवर्तिनां भगवद्भजनेऽपि फलाभावम् आह भक्तिमार्गानुसारेण इति सार्द्धेन.

भक्तिमार्गानुसारेण मतान्तरगता नराः।।
भजन्ति बोधयन्त्येवम् अविरुद्धं न बाध्यते।।
नैकान्तिकं फलं तेषां विरुद्धाचरणात् क्वचित्।।१००।।

नहि मायावादादिमते श्रीकृष्णादिः व्यवहारत्वाद् ब्रह्म भवितुम् अर्हति. ते तु सदानन्द-चित्स्वरूपम् इति चाहुः. अतः स्वमते यथा तथा पदार्थसिद्ध्यभावात् चेद् भक्तिमार्गानुसारेणैव वदन्ति इति ज्ञातव्यम्, तदा तेषां प्रतित-न्त्रन्यायाभ्युपगमसिद्धान्तो भवति. तावता तेषां फलं भविष्यति इति आशङ्क्य आह नैकान्तिकम् इति. कस्यचिद्

भक्तेरेव अतिशये नाममात्रेण मायावादित्वे बिल्वमङ्गलादीनामिव मोक्षो भवेदपि, नतु स्वमतपक्षपाते, अतो नैकान्तिकं फलम्. तत्र हेतुः, विरुद्धाचरणाद् इति. भगवति कदाचिद् अन्यथाभावनया स्वाज्ञानकल्पितत्वादिना।।१००।।

एसें मतान्तरको निराकरण करिके भक्तिमार्गकी रीतिसों भगवद्भजन करे हें उनकुं ही फल मिले हे. अन्य मार्गवर्ती होयकें भजन करे तो फल नहिं होय हे ये आज्ञा करे हें. ''भक्तिमार्गानुसारेण'' इति.

श्लोकार्थ:अन्य मतन्को अनुसरण अथवा अवलम्बन करिवे वारे लोग यदि भक्तिमार्गानुसार भगवान्को भजन करे हें तथा तदनुसार ही पदार्थन्को बोध करावे हें तो उनको या प्रकारको अविरुद्ध भजन बाधित नहीं होय हे, किन्तु उन लोगन्कुं भक्ति-मार्गसों विरुद्ध आचरण करिवेके कारण ऐकान्तिक फल अर्थात् मोक्ष प्राप्त नहीं होवे हे.

मायावादादि मतमें ब्रह्मकुं व्यवहारके योग्य नहिं माने हें ओर श्रीकृष्णकुं व्यवहारके योग्य माने हें तासों उनकी रीतिसों श्रीकृष्ण ब्रह्म ही नहिं होय सकें हे.

कदाचित् कहोगे के उनके मतमें सदानन्द-चित्स्वस्पकुं ब्रह्म कहे हें, तो वे भी भक्तिमार्गानुसार ही कहि रहे हें एस ही जाननो चहिये, क्योंके जा शास्त्रको जो अङ्गीकार कर लेवे हे वो पुरुष वा शास्त्रके मतकुं ही अपनो मुख्य सिद्धान्त माने हे. तथा 'अन्धहस्ति'न्याय करिकें एक-एक शास्त्र ईश्वरके एक देशको प्रतिपादन करिवे वारे हें तासों वा मत करिकें फल भी अवश्य होयगो.

तहां उत्तर देत हें. मायावादीके मतमें मोक्ष कोई पुरुषको होवे तो भी मायावाद भगवद्भजनको साधक नहिं हो सके हे. जेसें बिल्वमङ्गल जो पूर्वावस्थामें विरुद्धाचरण वाले भी हते परन्तु पीछें प्रबल भक्ति करिकें मोक्षकों प्राप्त भये एसें प्रबल भक्ति होय तो नाम मात्रको मायावादी भी होय तो भी मोक्ष हो जाय. यदि मायावादको पक्षपात नहिं करें तो, क्योंके मायावादकी रीतिसों भगवान्में विपरीत भावना करिकें अज्ञानकी कल्पित बुद्धि हो जाय तो भक्ति सर्वथा सिद्ध नहिं होय. यासों मायावादादि मतमें भक्तिविरुद्ध आचार होयवेसों फलप्राप्तिको निश्चय नहिं होय सके हे ये बात सिद्ध भई।।१००।।

एवं परमतं निराकृत्य, स्वमते यथा भजनं तथा सङ्कलीकृत्य आह एवं सर्वम् इति.

एवं सर्वं ततः सर्वं स इति ज्ञानयोगतः।।
यः सेवते हरिं प्रेम्णा श्रवणादिभिरुत्तमः।।१०१।।

एवं सर्वं निश्चित्य, सर्वं भगवतएव, सएव च सर्वम् इति वैदिक-गौणमुख्यज्ञानयुक्तः, प्रेम्णा श्रवणादिप्रकारेण यः भजते स भक्तिमार्गे उत्तमः।।१०१।।

श्रीआचार्यजी आज्ञा करे हें जो या ग्रन्थमें ज्ञान वर्णन कियो ताको निश्चय करिकें, अर्थात् सब जगत् भगवान् सों ही प्रकट भयो हे तथा भगवान ही सर्वस्प हें एसें गौण-मुख्य भावसों भगवान्को माहात्म्य जानिकें, चित्तके वैराग्यद्वारा विषयभोगकी आसक्ति छोडिकें, योगके द्वारा चित्तकों एकाग्र करिके, तपश्चर्याके द्वारा देहेन्द्रियादिकन्कुं पक्के करिके उत्कट प्रेमसों प्रकट भयो जो रस वा रसके बढवेसों भक्तिको ही परम पुरुषार्थस्प मानिकें श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य तथा आत्मसमर्पण स्प नव प्रकार करिकें भगवान्को भजन करे हे वो उत्तमाधिकारी हे।।१०१।।

प्रेमाभावे मध्यमः स्याज्ज्ञानाभावे तथादिमः।।
उभयोरप्यभावे तु पापनाशस्ततो भवेत्।।१०२।।

शास्त्रार्थज्ञानाभावेऽपि प्रेम्णा भजने मध्यमः. प्रेमाभावे मध्यमः इति वा. ज्ञानाभावे तथा मध्यमः इति अर्थः. आदिमो वा. उभयोः अभावे श्रवणादीनां पापनाशकत्वं धर्मत्वं वा, नतु भक्तिमार्गः इति अर्थः।।१०२।।

जो मनुष्य शास्त्रके द्वारा भगवान्के माहात्म्यकुं तो नहिं जानतो होय परन्तु उत्कट प्रेम करिकें श्रवण-कीर्तनादि नव भक्ति करिकें भगवत्सेवा करतो होय वाकुं मध्यमाधिकारी कहेनो, क्योंके माहात्म्य जानिकें वाको प्रेम भयो हे तासों वो प्रेम गौण हे. जो पुरुष शास्त्रके द्वारा भगवान्के माहात्म्यकुं जानके प्रेमविना श्रवणादि नवप्रकारन्के द्वारा भगवद्भजन करे हे वामें मुख्य अङ्ग प्रेमके नहिं होयवेसों वाकुं भी मध्यमाधिकारी कहेनों. जो पुरुष शास्त्रद्वारा भगवन्माहात्म्यकुं भी नहिं जानें हे, जामें सबसों अधिक उत्कट प्रेम भी नहिं हे, साधारण प्रेम करिके श्रवणादि नवप्रकारसों भगवद्भजन करे हे वाकुं 'आदिम', अर्थात् हीनाधिकारी कहनो. जो पुरुष ज्ञानवारो भी नहिं होय तथा प्रेमवारो भी नहिं होय, केवल श्रवणादि नव प्रकारन्सों भगवद्भजन करतो होय वा पुरुषको पापनाश मात्र होय हे, क्योंके श्रवणादिकन्कुं पानाशकता भागवत द्वितीयस्कन्धमें ''लोकस्य सद्यो विधुनोति कल्मषम्'' (भाग.पुरा.२।४।१२) या श्लोकमें लिखी हे. अथवा प्रेम-ज्ञान विना श्रवणादिककुं चान्द्रायणादिकन्के समान धर्मस्प समुझनो परन्तु माहात्म्यज्ञान पूर्वक स्नेह रहित हे तासों भक्तिमार्गीय वे नहिं होय सके हे।।१०२।।

तपोवैराग्ययोगे तु ज्ञानं तस्य फलिष्यति।।
योगयोगे तथा प्रेम स्तुतिमात्रं ततोऽन्यथा।।१०३।।

तपोवैराग्यसहितं चेत् श्रवणादिकं भवेद्, अन्यतरसहितं वा, तदा जन्मान्तरे ज्ञानं भविष्यति इति ज्ञातव्यम् ''बहूनां जन्मनामन्ते'' (भग.गीता.७।१९) इति वाक्यात्. योगसहितभजने प्रेम. प्रथमस्य मध्यमत्वं, मध्यमस्य उत्तमत्वम् इति क्रमः. मार्गाङ्गाभावे केवलश्रवणादीनां यत् परमपुरुषार्थसाधकत्वं निस्प्यते तद् भगवतः स्तोत्रनिस्पणं, 'धन्यो अहम्'' इत्यादिवत्. प्रमेयबलेन तेषां सिद्धिः भवति चेद् भवतु, न अन्यथा इति अर्थः।।१०३।।

जो पुरुष तप-वैराग्य सहित होयकें श्रवणादि नव प्रकारसों भगवद्भजन करे हे अथवा केवल तप सहित होयकें अथवा केवल वैराग्य सहित होयकें श्रवणादि नव प्रकारसों भगवद्भजन करे हे वाके किये भये श्रवणादिकन्कुं ज्ञानमार्गीय समुझनो. विन श्रवणादिकन्सों जन्मान्तरमें ज्ञानप्राप्ति होवे हे.

जो पुरुष योगद्वारा चित्तकुं एकाग्र करिके केवल योग सहित होयकें श्रवणादिक नव भक्ति करे हे वाके श्रवणादिक भक्तिमार्गीय हें तासों विन श्रवणादिकन्सों प्रेम प्रकट होवे हे. साधन करते-करते प्रथमाधिकारी हे सो मध्यमाधिकारी हो जावे हे, मध्यमाधिकारी साधन करते-करते उत्तमाधिकारी होय जावे हे.

ज्ञानमार्गकी रीतिसों अथवा भक्तिमार्गके अनुसार करे भये ही श्रवणादिक भगवप्राप्ति साधक हें. ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्ग विना तथा तप-वैराग्य-ज्ञान-प्रेम-योगस्प पांच साधन विना केवल श्रवणादिककुं जो परमपुरुषार्थ साधक कहे हें वो भगवान्की स्तुतिमात्र हे. अर्थात् ''कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तबन्धः परं व्रजेत्'' इत्यादि वाक्यन्कुं भगवान्की स्तुति करिवेवारे जानने. जेसे कोई पुरुषके घर कोई महात्मा पधारे तब वो कहे हे ''में धन्य हुं, मेरे घर आप पधारे'' वाको एसे कहेनो महात्माकी स्तुति करनों ही केवल समुझो जावे हे, एसें ही केवल श्रवणादिकन्कुं पुरुषार्थ साधक बतायके भगवान्की स्तुति करी हे. अर्थात् भगवान् बडे कृपालु हें, साधन विना केवल श्रवणादिकसों ही पुरुषार्थसिद्धि करि देत हें इत्यादि. तात्पर्य ये हे के कभी भगवान् अपनें प्रमेयबलसों पञ्च साधन रहित केवल श्रवण-कीर्तनादिकन्सों भी सिद्धि देत हें, जेसें अजामिलकुं भगवत्प्राप्ति भई. परन्तु शास्त्रोक्त प्रमाणानुसार तो ज्ञानमार्ग अथवा भक्तिमार्ग की रीतिसों पञ्चाङ्ग सहित अथवा पांचन्मेंसों कोई एक दृढ अङ्ग सहित हि श्रवणादिक भगवत्प्राप्ति करायवे वारे हें ये ही सिद्धान्त सिद्ध होवे हे।।१०३।।

एवं शास्त्रार्थम् उक्त्वा उपसंहरति अर्थोऽयमेव इति.

अर्थोयमेव निखिलैरपि वेदवाक्यै: रामायणै: सहितभारतपञ्चरात्रै:।।
अन्यैश्च शास्त्रवचनै: सह तत्त्वसूत्रै: निर्णीयते सहृदयं हरिणा सदैव।।१०४।।

इति श्रीश्रीकृष्णव्यासविष्णुस्वामिमतवर्ति श्रीवल्लभदीक्षितविरचिते
तत्त्वार्थदीपनिबन्धे शास्त्रार्थकथनं प्रथमं प्रकरम्।।

सर्वेषां प्रमाणानाम् अत्र एकवाक्यता. अन्येषु वाक्याभासाएव. रामायणानां बहुत्वं सर्वकल्पेष्वपि एवमेव प्रतिपादयन्ति इति ज्ञापनार्थम्. भारत–पञ्चरात्रयो: रामायणशेषत्वं चरित्रप्रतिपादकत्वाविशेषात्. अन्यानि शास्त्राणि पुराणस् पाणि. तच्छेषत्वं भारतादे:. तत्त्वसूत्राणि चतुर्लक्षणी मीमांसा. तै: सर्वैरपि ज्ञानं प्रेमसहितं कर्तव्यम् इति निर्णी–यते. अन्यथा चतुर्दशविद्यानां सरस्वतीस् पत्वाद् एकनिष्ठता न स्यात्. तत्रापि सहृदयम्, भावोऽपि तस्या: एकत्रैव इति. अयम् अर्थ: सरस्वतीभर्त्रैव ज्ञायतइति 'हरिणा' इति उक्तम्. कदाचिद् अन्यथा केचिद् वक्ष्यन्तीति तन्निराकरणार्थं 'सदा' इति।।१०४।।

या प्रकारसों शास्त्रार्थ अर्थात् भगवद्गीताशास्त्रके प्रतिपाद्य अर्थको निस् पण करिके प्रस्तुत प्रकरणके उपसंहारको उपक्रम करे हें.

श्लोकार्थ : सभी वेदवाक्य, महाभारत, पञ्चरात्र, आगम, रामायण तथा ब्रह्मसूत्र सहित अन्य शास्त्रके वचनन्में ये ही ब्रह्मवा–दको प्रतिपादन भयो हे, ये ही सिद्धान्त कह्यो गयो हे. भगवान् श्रीहरिने गीतामें या ही सिद्धान्तको सर्वकालिक सत्यके स् पमें निर्धारण कियो हे तथा उनको तात्पर्य भी या ही सिद्धान्तमें हे.

श्रीमदाचार्यचरण आज्ञा करे हें के मुख्य सिद्धान्त ये ही हे. यामें सब प्रमाणन्की एकवाक्यता हे, अर्थात् समस्त वेद–वाक्य, रामायण, तदङ्गभूत भारत–पञ्चरात्र तथा समस्त पुराण–व्याससूत्र इन सब प्रमाणन् करिकें प्रेम सहित ज्ञान सिद्ध करनो ये ही निर्णय होवे हे. अन्य रीतिसों निर्णय कियो जाय तो चतुर्दशविद्यास् प सरस्वतीकी एकनिष्ठता कभी नहिं होय सके हे. तहां भी सरस्वतीको हृदय सहित भाव निजपति एक भगवान्में ही हे तासों पतिव्रताके अभिप्रायकुं जेसें पति विना अन्य कोउ नहिं जान सके हे एसें सरस्वतीके या प्रकारके अभिप्रायकुं सरस्वतिके भर्ता श्रीहरि ही जानें हे. ये एकादश स्कन्धमें भगवान्नें आज्ञा करी हे. ''इत्यस्या हृदयं लोके नान्यो मद्वेद कश्चन''. अर्थ:या सरस्वतीके हृदयके अभिप्रायकुं मेरे विना अन्य कोउ नहिं जाने हे. तासों आगे होयवे वारे विद्वान् या सिद्धान्तसों विरुद्ध कहें तो सर्वथा नहिं माननो. सदा सर्वदा याहीकुं मुख्य सिद्धान्त समुझनो–।।१०४।।

प्रमाणबलमाश्रित्य शास्त्रार्थो विनिस् पित:।।
प्रमेयबलमाश्रित्य सर्वनिर्णय उच्यते।।

इति श्रीतत्त्वदीपनिबन्धटीकायां प्रकाशाख्यायां श्रीवल्लभाचार्यकृतायां प्रथमं प्रकरणम्।।

या प्रकार प्रमाणबलको आश्रय करिके शास्त्रार्थ अर्थात् गीतार्थको सम्यक् निस् पण भयो. अब प्रमेयबलको आश्रय करिके 'सर्वनिर्णय'नामको दूसरो प्रकरण कह्यो जाय हे.

इति श्रीमद्गोस्वामिवर्यरणछोडलालात्मजजैवातृकजीवनलालविरचितायां
साचोरापण्डितगोकुलदासेन लोके प्रकटीकृतायां
निबन्धतात्पर्यबोधिन्यां भाषाटीकायां
प्रथमं शास्त्रार्थप्रकरणं समाप्तम्।।
श्रीगोवर्द्धननाथो जयति।